अध्याय १

नागरिक-शास्त्र, राज्य और आदर्श नागरिकता

नागरिक-शास्त्र और उसका महत्त्व

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह परिवार में रहता है। परिवार के लोगों के बीच कई तरह के सम्बन्ध होते हैं। जैसे पिता-पुत्र का सम्बन्ध, भाई-बहन का सम्बन्ध, पति-पत्नी का सम्बन्ध आदि।

परिवार के लोग आपस में मिलकर रहते हैं। सुख और दुःख में एक-दूसरे का हाथ बंटाते हैं। एक-दूसरे की सहायता करते हैं। इस तरह परिवार की रक्षा होती है। यह तो हुआ हमारा पारिवारिक जीवन। इसके बाहर हमारा सम्बन्ध अपने पड़ोसी से होता है। हम अपने पड़ोसी का सुख-दुःख में साथ देते हैं, और वह भी हमारे सुख-दुःख में साथ देता है। इसके अलावा हम किसी राज्य में रहते हैं। राज्य में रहने के नाते हम उसके सदस्य हैं, और 'नागरिक' कहलाते हैं।

नागरिक किसी राज्य का वह सदस्य है, जिसे राज्य से कुछ अधिकार प्राप्त हों और जो उन अधिकारों के बदले राज्य

के प्रति कुछ कर्त्तव्यों का पालन करता हो। नागरिक-शास्त्र नागरिकों के अधिकारों, कर्त्तव्यों तथा उनका परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र और विश्व के साथ सम्बन्ध का ज्ञान कराता है। अच्छा सामाजिक जीवन बिताने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक-शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए।

यह शास्त्र हमें अपने सम्बन्धियों, पड़ोसियों, नगर, जाति, देश और मनुष्य-मात्र के प्रति कर्त्तव्य और व्यवहार की शिक्षा देता है। इस शास्त्र के पढ़ने से मानव में प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, बलिदान, जनसेवा, विश्व-बन्धुत्व आदि अच्छे गुणों का विकास होता है और वह समाज के कलह, द्वेष, संघर्ष तथा अन्य दुर्गुणों को उखाड़ फेंकने के योग्य बनता है। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, और दोनों की उन्नति में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। एक की उन्नति और विकास दूसरे पर आधारित है।

नागरिक-शास्त्र हमें अच्छी राष्ट्रीयता और देश-प्रेम से परिचित कराता है, आपसी द्वेष और संघर्ष के खतरे से आगाह करता है और यह बतलाता है कि राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता का सुन्दर सम्बन्ध किस प्रकार सम्भव हो सकता है। तात्पर्य यह कि नागरिक-शास्त्र हमें समाज में रहना सिखलाकर हमें अपने और समाज के विकास के योग्य बनाता है।

नागरिक-शास्त्र हमें यह भी बतलाता है कि राज्य क्या है, उसका शासन कैसे चलता है और सरकार का संगठन कैसे

होता है। इसके पढ़ने से हमें यह मालूम होता है कि हमारी सरकार का उद्देश्य क्या है, हमारे मूल अधिकार कौन-कौन-से हैं, और सरकार के प्रति हमारे कर्त्तव्य क्या हैं। आज तो नागरिक-शास्त्र का महत्त्व हमारे जीवन में और भी बढ़ गया है और बढ़ता ही जा रहा है, कारण कि राज्य और सरकार का प्रभाव हमारे जीवन पर दिनानुदिन बढ़ता जा रहा है।

राज्य क्या ?

अब यह प्रश्न उठता है कि राज्य क्या है ? राज्य मनुष्यों के उस समुदाय या संगठन को कहते हैं, जो एक निश्चित भू-भाग में रहता हो, जिसकी ऐसी संगठित सरकार हो, जो बाहरी नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्र हो और जिसकी आज्ञा का पालन अधिकांश जनता स्वेच्छा से ही करती हो। इस प्रकार राज्य के चार आवश्यक तत्त्व हैं :—(क) जनसंख्या, (ख) भूमि, (ग) संगठित सरकार, (घ) स्वतन्त्रता और प्रभुत्व-शक्ति। राज्य की सदस्यता प्रत्येक नागरिक के लिए जरूरी रहती है। प्रत्येक नागरिक को किसी-न-किसी राज्य का सदस्य अवश्य रहना पड़ता है। राज्य की आज्ञाओं और नियमों का पालन प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य होता है। यदि कोई नागरिक उसकी अवहेलना करता है, तो उसे राज्य द्वारा निर्धारित दण्ड भोगना पड़ता है।

हमें 'राज्य' और 'सरकार' के भेद को भी जान लेना जरूरी है। ये दोनों एक ही नहीं हैं। 'राज्य' व्यापक शब्द है। 'राज्य'

से हमें शासक-वर्ग तथा शासित-वर्ग दोनों का बोध होता है; परन्तु 'सरकार' द्वारा केवल शासक-वर्ग का ही बोध होता है; राज्य का सरकार केवल एक अंग है। यह राज्य के चार तत्वों में से एक तत्व है। राज्य के सम्पूर्ण काम सरकार द्वारा ही होते हैं। राज्य स्थायी होता है, सरकार अस्थायी। उदाहरण के लिए भारत को ही ले जीजिए। भारत एक राज्य है, और यहां कांगरेस-दल की सरकार है। यह सरकार बदल सकती है। आज कांगरेस-दल का बहुमत है, तो कल किसी अन्य दल का बहुमत हो सकता है, और उसी की सरकार बन सकती है। परन्तु भारत तो भारत ही रहेगा, भले ही उसके शासन-संगठन में परिवर्त्तन क्यों न हो जाय।

सभी मानव-समुदायों में राज्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। राज्य के अभाव में समूचे सामाजिक जीवन की शान्ति और व्यवस्था नष्ट हो जायगी। चारों तरफ अराजकता, लूट-पाट, मार-पीट आदि का बोलबाला हो जायेगा। राज्य की सरकार नागरिकों के जीवन में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए कानून बनाती है, और नये-नये विभागों की स्थापना करती है। राज्य हमें बाहरी शत्रुओं से भी बचाता है और हमारी राष्ट्रीय मर्यादा और स्वतन्त्रता की रक्षा करता है। इन सब बातों से हम समझ सकते हैं कि हमारे जीवन में राज्य की कितनी बड़ी आवश्यकता है। नागरिक-शास्त्र हमें इन सब विषयों का भी बोध कराता है।

आदर्श नागरिकता

नागरिक-शास्त्र हमें आदर्श नागरिकता का भी पाठ पढ़ाता है। अपने परिवार, पड़ोस, गाँव, नगर, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानव-जाति से किस तरह का बर्ताव करना चाहिए, उनके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए और हम एक ही समय उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों का उचित सामंजस्य कैसे करें, इन सब बातों का बोध हमें इस शास्त्र द्वारा होता है। इसके अध्ययन द्वारा हम श्रेष्ठ नागरिक जीवन के निर्माण में आनेवाली सभी बाधाओं से बचना सीख जाते हैं। अज्ञान, स्वार्थ, पक्षपात, उदासीनता आदि से दूर रहने की शिक्षा हमें यह शास्त्र देता है। योग्य नागरिक बनने के लिए जरूरी है कि नागरिक के आदर्श उच्च हों, और उसमें उत्तम गुण विद्यमान हों। इसके लिए उच्च नैतिक स्तर का होना भी जरूरी है। बौद्धिक विकास और जीवन की साधारण जरूरतों की पूर्त्ति भी इसके लिए आवश्यक है। इन सब बातों की जानकारी भी हमें नागरिक-शास्त्र द्वारा मिलती है।

नवीन भारत के पुनर्निर्माण के लिए तो नागरिक-शास्त्र का अध्ययन विशेष आवश्यक है। ऐसे नव-निर्माण के समय में देश के करोड़ों विद्यार्थियों एवं नवयुवकों से हमें अनेक आशाएँ हैं। उन्हें आदर्श नागरिक बनकर देश को आगे बढ़ाना है। उनके लिए आदर्श नागरिकता का पाठ अत्यन्त आवश्यक है और यह पाठ नागरिक-शास्त्र के अध्ययन द्वारा ही सम्भव है। अतः

आज के भारतीय विद्यार्थियों के लिए तो नागरिक-शास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से अनिवार्य है और देश की इस संकट-कालीन स्थिति में उनकी जिम्मेदारी और भी बढ़ गयी है।

अभ्यास

(१) नागरिक-शास्त्र के अध्ययन की क्यों आवश्यकता है ?
(२) राज्य से आप क्या समझते हैं ?
(३) आदर्श नागरिक बनने के लिए किन-किन गुणों की जरूरत होती है ?

●

अध्याय २

स्थानीय स्वायत्तशासन और उसका महत्त्व

किसी भी राज्य में कई ऐसी स्थानीय महत्त्व की बातें होती हैं, जिनका सुन्दर प्रबन्ध उस राज्य की राजधानी में बैठकर नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसा आवश्यक समझा गया है कि उन विषयों के प्रबन्ध का अधिकार स्थानीय अधिकारियों और वहां कि जनता को दे दिया जाय। इसी को स्थानीय स्वायत्तशासन कहते हैं, अर्थात् किसी स्थान के निवासियों का वह अधिकार जिसके द्वारा वे अपने नगर, जिला अथवा गांव की कुछ विशेष बातों का प्रबन्ध स्वयं कर सकें, स्थानीय

स्वायत्तशासन कहलाता है। आजकल प्रायः सभी उन्नतिशील देशों में इसकी व्यवस्था है। भारत-जैसे बृहत् देश के लिए तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है। भारतीय संघ की राजधानी दिल्ली अथवा किसी भी राज्य की राजधानी में बैठकर अत्यन्त दूर के गांवों और छोटे-छोटे नगरों की विशेष आवश्यकताओं और समस्याओं को ठीक से नहीं समझा जा सकता है। अतः उनके प्रबन्ध का भार वहाँ की जनता को ही सौंप दिया गया है। हाँ, यह बात जरूरी है कि उनपर राज्य की सरकार अपनी निगरानी रखती है, ताकि किसी प्रकार की धाँधली न होने पावे।

स्थानीय स्वायत्तशासन की व्यवस्था

स्थानीय स्वायत्तशासन की आवश्यकता निम्नलिखित बातों से झलकती है।

(१) ऐसी व्यवस्था से केन्द्रीय अथवा राज्य-सरकारों का काम घटता है और वे अपनी शक्ति को अन्य बड़े-बड़े कामों में लगा सकती है, जैसे देश की रक्षा, विदेशों के साथ सम्बन्ध, देश में रेल-तार का विकास आदि।

(२) देश के अलग-अलग भागों की समस्याएँ विभिन्न होती हैं। इन स्थानीय समस्याओं का पूरा ज्ञान, केन्द्र अथवा राज्य की सरकारों को समय पर नहीं प्राप्त हो सकता। उनकी पूरी जानकारी वहाँ के रहनेवालों को ही रहती है और इसीलिए

उनका प्रबन्ध भी उन्हीं लोगों पर छोड़ दिया जाता है, जिससे की उनकी व्यवस्था ठीक तरीके से हो सके।

(३) स्थानोय स्वायत्तशासन द्वारा वहाँ कि जनता को व्यावहारिक राजनीति की शिक्षा मिलती है, जो भारत-जैसे लोकतन्त्र के लिए बहुत ही जरूरी है। स्थानीय स्वायत्तशासन लोकतन्त्र की सबसे बड़ी पाठशाला है। इसके द्वारा जनता अपनी जिम्मेवारी को समझने लगती है और शासन के तौर-तरीके को जान लेती है। इसके फलस्वरूप लोगों को बड़ी-बड़ी संस्थाओं के चलाने में कठिनाई नहीं होती है।

(४) स्थानीय संस्थाओं द्वारा वहाँ के काम जल्दी से और कम खर्च पर किये जा सकते हैं। यदि दूर की केन्द्रीय या राज्य की सरकारों पर इसके शासन का पूरा भार डाल दिया जाय, तो काफी खर्च बढ़ जायगा और काम भी ठीक से नहीं हो सकेगा।

अतः हम देखते हैं कि स्थानीय स्वायत्तशासन का काफी महत्त्व है।

स्थानीय स्वायत्तशासन के रूप

स्थानीय स्वायत्तशासन के मुख्यतः दो रूप अथवा प्रकार है—(१) गांवों के प्रबन्ध के लिए स्वायत्तशासन और (२) नगरों अथवा शहरों के लिए स्वायत्तशासन। इनमें से प्रत्येक के शासन के लिए अलग-अलग संस्थाएं हैं। गांवों के

स्वायत्तशासन के लिए पहले जिला बोर्ड, स्थानीय बोर्ड तथा संघ-मण्डल नामक संस्थाएँ थीं। जिला बोर्ड हर जिले में संगठित होता था, स्थानीय बोर्ड हर उप-मण्डल में तथा संघ-मण्डल बड़े
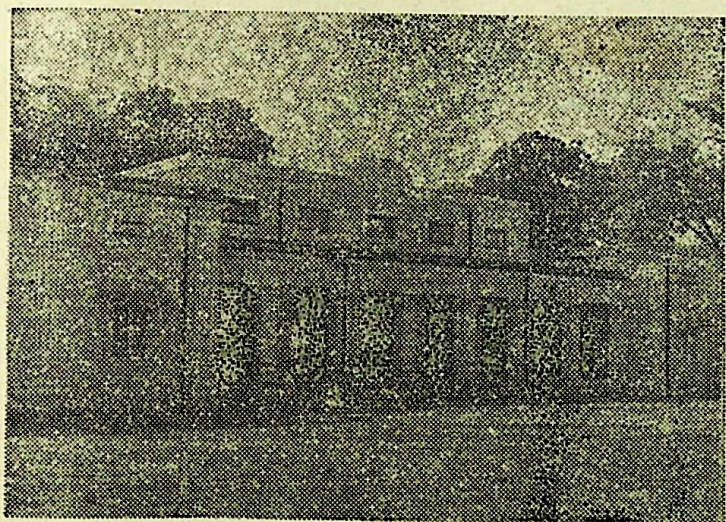
पटना जिला-बोर्ड-भवन

गाँवों या ग्राम-समूहों में। स्वतंत्रता के बाद से इन संस्थाओं का महत्व घटने लगा। अब गावों अथवा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्थानीय स्वायत्तशासन की नयी-नयी संस्थाएँ विकसित हो रही हैं। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(क) ग्राम-पंचायत

(ख) पंचायत-समिति

(ग) जिला-परिषद्

नगरों की स्थानीय स्वायत्तशासन की संस्थाओं में निम्नलिखित मुख्य हैं—

(क) नगरपालिका अथवा म्युनिसिपैलिटी, (ख) निगम (कॉरपोरेशन), (ग) नगर-क्षेत्र-समिति (टाउन-एरिया-कमिटी) (घ) अधिसूचित-क्षेत्र-समिति (नोटिफायड-एरिया-कमिटी) और (ङ) कटक-मंडल (कैन्टोन्मेंट-बोर्ड) और पत्तन-प्रबन्ध-समिति (पोर्ट-ट्रस्ट)।

इनमें से प्रत्येक का वर्णन आगे आनेवाले अध्यायों में दिया गया है।

अभ्यास

(१) स्थानीय स्वायत्तशासन से आप क्या समझते हैं।
(२) स्थानीय स्वायत्तशासन के महत्त्व और उसके प्रकार पर प्रकाश डालिए।

अध्याय ३

ग्राम-पंचायत

भारत की अधिकांश-जनता गाँवों में रहती है। इसलिए देश की उन्नति के लिए ग्रामों की दशा में उचित सुधार करना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब कि गाँववाले आपस में मिल-जुलकर तथा सुसंगठित होकर अपने गाँवों की उन्नति के लिए पूरी चेष्टा करें। इसी उद्देश्य से ग्राम-पंचायतों का संगठन किया जा रहा है। भारतीय इतिहास को पढ़ने से मालूम हो जाता है कि प्राचीन काल से ही हमारे देश में ग्राम-पंचायत की प्रथा चली आ रही है। अंगरेजी शासन के समय में इनका नाश होने लगा था। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत में इन्हें पुनः संगठित किया जा रहा है। स्वतन्त्र भारत के संविधान में राज्य-सरकारों को यह आदेश दिया गया है कि वे ग्राम-पंचायत की स्थापना के लिए पूरा प्रयत्न करें। बिहार-राज्य में ग्राम-पंचायत का संगठन बिहार-पंचायत-राज्य-अधिनियम १९४७ ई० की धाराओं के अनुसार किया जा रहा है। यह कानून जनवरी, १९४९ ई० से लागू किया गया है। बाद में इस कानून में कई संशोधन हुए हैं।

संगठन

जिस गाँव में बालिग स्त्री-पुरुषों की संख्या साधारणतः एक हजार है, वहाँ एक पंचायत संगठित होती है। आस-पास के कई छोटे-छोटे गाँवों को मिलाकर भी एक ग्राम-पंचायत बन सकती है। प्रत्येक पंचायत की प्रायः एक सालाना और एक छमाही साधारण बैठक क्रमशः अगहनी और चैती फसलों के बाद होती है। इसके अलावा मुखिया स्वयं पंचायत के कम-से-कम एक बटे पाँच सदस्यों की लिखित माँग पर किसी समय भी असाधारण बैठक बुला सकता है।

गाँव में रहनेवाले सभी वयस्क नर-नारी जिनकी आयु २१ वर्ष से कम न हो, ग्राम-पंचायत के सदस्य होते हैं, परन्तु पागल, दिवालिया और निर्वाचन या नैतिक दुराचार-सम्बन्धी अपराधी इस अधिकार से वंचित रहेंगे।

ग्राम-पंचायत की कार्यपालिका

ग्राम-पंचायत की एक कार्यकारिणी समिति या कार्यपालिका रहती है, जिसका प्रधान 'मुखिया' होता है। मुखिया का चुनाव पंचायत के सभी सदस्य अपने बीच से करते हैं, जो तीन वर्षों तक अपने पद पर रह सकता है। यदि सदस्य चाहें, तो मुखिया को इस अवधि के पहले भी हटाया जा सकता है। मुखिया को छोड़कर, कार्यपालिका समिति के आठ सदस्य होते हैं। इनमें

चार सदस्य पंचायत के सभी सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। शेष चार सदस्य मुखिया द्वारा मनोनीत होते हैं।

पंचायत-सेवक

हर ग्राम-पंचायत में एक सरकारी कर्मचारी होता है, जो पंचायत-सेवक कहा जाता है। पंचायत-सेवक पंचायत के कार्यालय के कागज-पत्रों को लिखता है तथा उन्हें हिफाजत से रखता है। पंचायत के कार्यों के सम्बन्ध में रिपोर्ट भी यही लिखता है।

पंचायत-सेवक पंचायत के कार्यों के सम्पादन में मुखिया की सहायता करता है। वह पंचायत के वार्षिक कार्य-क्रम का एक ब्योरा तैयार करता है और इसे पंचायत की कार्यपालिका के सम्मुख उपस्थित करता है। दूसरी ओर वह सरकार के विकास-विभागों से भी सम्पर्क रखता है। इस तरह, पंचायत-सेवक पंचायत तथा सरकार के बीच की कड़ी का काम करता है।

ग्राम-पंचायत के मुख्य कार्य

ग्राम-पंचायत के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं—

(क) सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए गाँव की सफाई, संक्रामक रोगों का नियन्त्रण तथा निवारण, प्राथमिक चिकित्सा, स्वच्छ पानी का प्रबन्ध आदि काम पंचायत करती है।

(ख) गांव में शान्ति और सुव्यवस्था रखना, चोरी-डकैती का नियन्त्रण, आग लगने पर घरों को बचाना आदि ।

(ग) सार्वजनिक सुविधा के लिए गांव में सड़कें बनवाना, कुंओं और चरागाहों की व्यवस्था, सराय, धर्मशाला और विश्राम-गृहों का निर्माण, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों की व्यवस्था आदि ।

इसी प्रकार सरकार के चाहने पर तथा कार्यपालिका के बहुमत के निर्णय पर पंचायत प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध, कृषि, मृत्यु, विवाह आदि की रजिस्ट्री, सड़कों पर रोशनी आदि का प्रबन्ध भी कर सकती है ।

ग्राम-कचहरी

प्रत्येक ग्राम-पंचायत का एक अपना न्यायालय होता है, जिसे ग्राम-कचहरी कहते हैं । इस कचहरी में गांव के छोटे-छोटे मुकदमों की सुनवाई होती है । ग्राम-कचहरी का अध्यक्ष सरपंच कहा जाता है । सरपंच पंचायत के सदस्यों द्वारा चुना जाता है । सरपंच को छोड़कर ग्राम-कचहरी में ८ पंच होते हैं । इन ८ पंचों में ४ पंचायत द्वारा चुने जाते हैं, शेष ४ सरपंच, चुने गये पंचों तथा मुखिया को छोड़कर ग्राम-पंचायत की कार्यकारिणी के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं ।

ग्राम-कचहरी के सभी पंच मिलकर अपने में से किसी एक को उप-सरपंच चुनते हैं । सरपंच की अनुपस्थिति में उप-सरपंच उसका कार्य संभालता है ।

ग्राम-कचहरी को फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के वादों (मुकदमों) के सुनने का अधिकार है। सदा कोशिश की जाती है कि मामले का निर्णय समझौता द्वारा हो जाय।

ग्राम-पंचायत की आय

ग्राम-पंचायत दो प्रकार के अनिवार्य कर लगा सकती है—

(क) श्रम-कर—इसके अनुसार निर्धारित आयु के सभी स्वस्थ पुरुष पंचायत के लिए शारीरिक परिश्रम करेंगे और एक व्यक्ति को साल में कम-से-कम ४८ घंटे काम करना होगा। जो व्यक्ति श्रम नहीं करना चाहें, वे उस गांव में प्रचलित तथा मुखिया द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर से पंचायत-कोष में अपने श्रम के बराबर रुपया जमा कर सकते हैं।

(ख) गांव की अचल सम्पत्ति, जैसे मकान, फुलवारी, बाग-बगीचे आदि पर भी कर लगाया जा सकता है। इसके अलावा और भी छोटे-छोटे कर लगाये जा सकते हैं, जैसे पानी-निकास की फीस, प्रकाश-कर, जानवरों पर कर, पाखाना कर, हाट-बाजारों में चीजों के बेचने की फीस आदि। प्रत्येक पंचायत का एक कोष रहता है, जिसमें आय के रुपये जमा रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर राज्य-सरकार और जिला-बोर्ड से भी आर्थिक सहायता मिल जाती है।

ग्रामरक्षा-दल

पंचायत-राज-कानून के अनुसार प्रत्येक पंचायत का एक ग्रामरक्षा-दल भी संगठित रहता है। इस दल में गांव के सभी

स्वस्थ नवयुवक, जिनकी अवस्था १८ से ३० वर्षों के बीच में रहती है, भरती किये जाते हैं। इस दल का एक नायक होता है, जिसे सरकार की ओर से उचित प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) भी दिया जाता है। इस दल का मुख्य काम है चोरी-डकैती, अगलगी आदि से गाँव की रक्षा करना।

अतः हम देखते हैं कि ग्राम-पंचायतों का संगठन अत्यन्त ही आवश्यक है। हमारी राज्य-सरकार इस दिशा में काफी प्रयत्न कर रही है। बिहार में पंचायतों की देख-रेख के लिए एक निदेशक (डाइरेक्टर), एक उपनिदेशक तथा प्रत्येक जिला में एक-एक जिला-पंचायत-अधिकारी तथा अनेक पर्यवेक्षक (सुपरवाईजर) नियुक्त किये गये हैं।

ग्राम-पंचायत के प्रकार

हमारे राज्य में ग्राम-पंचायतें तीन प्रकार की हैं—प्रथम श्रेणी की ग्राम-पंचायत, द्वितिय श्रेणी की ग्राम-पंचायत तथा तृतीय श्रेणी की ग्राम-पंचायत। प्रथम श्रेणी की ग्राम-पंचायतें वे हैं, जिनका कार्य बहुत ही अच्छे ढंग से चल रहा है। द्वितीय श्रेणी की ग्राम-पंचायतें वे हैं, जिनका कार्य पहली श्रेणी की पंचायतों की अपेक्षा कम अच्छा है। तृतीय श्रेणी में वे ग्राम-पंचायतें हैं, जो अभी तक ठीक तरह से नहीं चल रही हैं।

ग्राम-पंचायतों की तीन श्रेणियां इसलिए बनायी गयीं हैं कि सभी ग्राम-पंचायतें दिनानुदिन उन्नति करती-जायें और तृतीय से द्वितीय श्रेणी में तथा द्वितीय से प्रथम श्रेणी में पहुँच जायें।
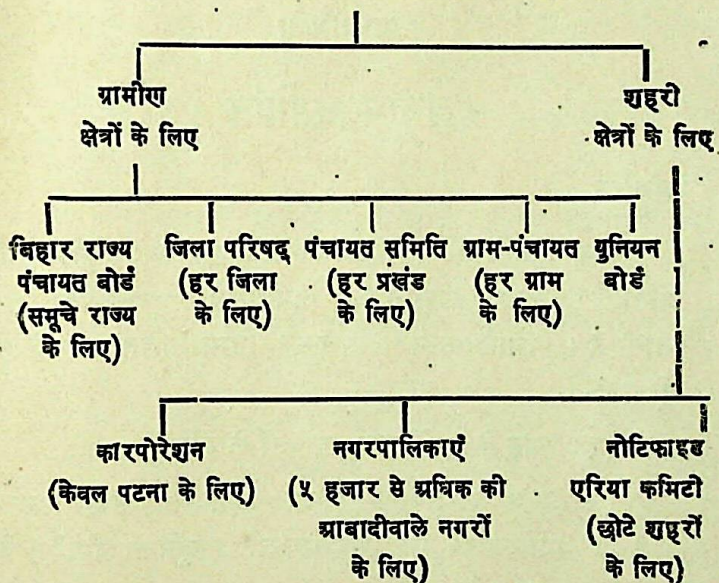
अभ्यास

(१) ग्राम-पंचायत का संगठन कैसे होता है ?
(२) ग्राम-पंचायत की कार्य पालिका का वर्णन करें।
(३) ग्राम-कचहरी में कितने पंच होते हैं। इनका कार्य क्या है।
(४) ग्राम-पंचायत की आय के साधन क्या-क्या हैं ?
(५) पंचायत-सेवक किसे कहते हैं। वह कौन-कौन काम करता है ?

अध्याय ४

पंचायत-समिति

संगठन

पंचायत-समिति का संगठन जिले के हर प्रखंड (ब्लॉक) में होता है। पंचायत-समिति का नाम प्रखंड के नाम पर रखा जाता है। पंचायत-समिति का गठन निम्नलिखित सदस्यों से होता है—

(१) प्रखंड के सभी ग्राम-पंचायतों के मुखिया।

(२) प्रखंड के क्षेत्र के अन्दर पड़नेवाली सभी नगर-पालिकाओं एवं संघ-मण्डलों (यूनियन बोर्डों) के अध्यक्ष।

(३) प्रखंड में पड़नेवाली सहयोग-समितियों के तीन प्रतिनिधि।

(४) प्रखंड के केन्द्रीय सहयोग बैंक की प्रबन्ध-समिति का एक प्रतिनिधि।

(५) संवाचित सदस्य।

ऊपर लिखे सदस्य निम्नलिखित सदस्यों को संवाचित करेंगे।

(क) प्रखंड में रहनेवाले दो ऐसे व्यक्ति, जिन्हें प्रशासन लोक-सेवा या ग्राम-विकास के कार्यों का अनुभव हो।

(ख) प्रखंड में रहनेवाली दो महिलाएँ।

(ग) प्रखंड में रहनेवाली अनुसूचित जातियों के दो प्रतिनिधि।

(घ) प्रखण्ड में रहनेवाली अनुसूचित जन-जातियों के दो प्रतिनिधि।

(ङ) अन्य ऐसे लोगों के दो प्रतिनिधि, जो उपर्युक्त श्रेणियों में नहीं आये हैं।

(६) सहायक सदस्य—निम्नलिखित सदस्य पंचायत-समिति के सहायक सदस्य के रूप में रहेंगे। इन्हें पंचायत की बैठकों में शामिल होने तथा इनकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा। लेकिन, ये पंचायत-समिति के निर्णयों में मतदान नहीं कर सकते। ये समिति के पदाधिकारी प्रमुख या उप-प्रमुख भी नहीं हो सकते।

(क) राज्य की विधान-सभा या संघ की लोक-सभा के ऐसे सदस्य, जिनका निर्वाचन-क्षेत्र पूरा-पूरा या अंशतः उस प्रखण्ड में पड़ता हो, जिसमें पंचायत-समिति कायम हो रही हो।

(ख) राज्य की विधान-परिषद् या संघ की राज्य-सभा के ऐसे सदस्य, जो प्रखण्ड में निवास करते हों।

इन सदस्यों के अलावा जिले का समाहर्त्ता, विकास-पदाधिकारी, उप-मंडल-पदाधिकारी तथा कुछ अन्य पदाधिकारी पंचायत-समिति की बैठकों में भाग ले सकते हैं।

सदस्यता की अवधि

पंचायत-समिति के जो सदस्य अपने पद की हैसियत से सदस्य हुए हैं, वे तबतक सदस्य बने रहेंगे, जबतक वे अपने पद पर रहेंगे। जो सदस्य संवाचित हुए हों, वे अपने संवाचन की तिथि से ३ वर्ष तक समिति के सदस्य रहेंगे।

सदस्यों की योग्यता

पंचायत-समिति के सदस्य के लिए यह जरूरी है कि वह, ऊपर लिखे शर्त्तों को पूरा करते हुए, भारत का नागरिक हो, उसकी अवस्था कम-से-कम २५ वर्ष की हो, वह पागल न हो, वह किसी नैतिक अपराध के लिए किसी न्यायलय द्वारा दंडित न हुआ हो तथा वह सरकार या किसी स्थानीय स्वायत्तशासन की संस्था का वेतनभोगी कर्मचारी न हो।

पंचायत-समिति के पदाधिकारी

पंचायत-समिति का प्रधान पदाधिकारी प्रमुख कहलाता है। उसके सहायक के रूप में एक उप-प्रमुख भी रहता है। ये दोनों पदाधिकारी पंचायत-समिति के सदस्यों (सहायक सदस्यों को छोड़कर) के द्वारा चुने जाते हैं।

पंचायत-समिति के कार्य

पंचायत-समिति के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(१) प्रखण्ड में रहनेवाले लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए गाँवों की सफाई की व्यवस्था करना, प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्रों का खोलना, प्रसूति-केन्द्रों की स्थापना करना, महामारियों की रोक-थाम के लिए टीका-सूई आदि की व्यवस्था करना।

(२) प्रखण्ड में शिक्षा के प्रचार के लिए प्राथमिक स्कूलों की स्थापना करना तथा समाज-शिक्षा-केन्द्रों की व्यवस्था करना एवं वाचनालय तथा पुस्तकालयों को खोलना एवं चलाना।

(३) प्रखण्ड में सड़कों की मरम्मत करवाना तथा नयी सड़कें बनवाना। इसी प्रकार, पुराने पुलों की मरम्मत करना एवं नये पुलों को बनवाना।

(४) कुटीर-उद्योगों का विकास करना।

(५) कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिये अच्छे बीज, सिंचाई, खाद आदि का प्रबन्ध करना।

(६) पशुओं की नस्ल के सुधार तथा उनकी चिकित्सा के लिये पशु-चिकित्सालय खोलना।

(७) समाज-कल्याण की संस्थाओं को खोलना तथा उन्हें संचालित करना।

अभ्यास

(१) पंचायत-समिति कहाँ गठित होती है ? इसके सदस्य कौन-कौन होते हैं ।
(२) पंचायत-समिति के अधिकारी कौन-कौन होते हैं ? इनका चुनाव कैसे होता है ।
(३) पंचायत-समिति के मुख्य कार्य क्या-क्या हैं ?

अध्याय ५

जिला-परिषद्

कहा जा चुका है कि पहले हर जिले में जिला-बोर्ड नाम की संस्था रहती थी, जो समूचे जिले के ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य-सफाई, शिक्षा, यातायात आदि पर ध्यान दिया करती थी ।

जिला-बोर्ड के संगठन तथा कार्य में कई तरह की त्रुटियाँ आ गयी थीं । साथ ही, वे भारतीय गाँवों की नयी आवश्यकताओं की पूर्त्ति में असमर्थ थीं । इसलिए कुछ वर्ष पहले राज्य-सरकार ने जिला-बोर्ड का प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया और इसके लिये विशिष्ट अधिकारी नियुक्त किये गये ।

अब जिला-बोर्डों के स्थान पर जिला के स्तर पर स्थानीय स्वायत्तशासन की नयी संस्था संगठित हो रही है । इस संस्था का

नाम जिला-परिषद् है । कई जिलों में जिला-परिषद् की स्थापना हो चुकी है । अन्य जिलों में भी उनकी स्थापना हो जायगी ।

संगठन

जिला-परिषद् निम्नलिखित सदस्यों से संगठित होती है—

(१) जिले की पंचायत-समितियों के सभी प्रमुख ।

(२) राज्य की विधान-सभा तथा संघ की लोक-सभा के वे सभी सदस्य, जिनका निर्वाचन-क्षेत्र उस जिले में पूर्णतः या अंशतः पड़ता हो ।

(३) राज्य की विधान-परिषद् या संघ की राज्य सभा के वे सभी सदस्य, जो उस जिले के निवासी हों ।

(४) जिले में पड़नेवाली नगरपालिकाओं तथा अधिसूचित-क्षेत्र-समिति (नोटिफाइड एरिया कमिटि) के सदस्यों द्वारा चुने गये ३ सदस्य ।

(५) केन्द्रीय सहयोग बैंक की प्रबन्ध-समितियों के सदस्यों के दो प्रतिनिधि ।

(६) जिले में रहनेवाली अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों से संवाचित एक-एक सदस्य ।

(७) जिले की महिलाओं में से संवाचित महिलाएँ—३ सदस्यं ।

(८) बिहार-राज्य पंचायत-परिषद् द्वारा मनोनीत १ सदस्य ।

कार्य की अवधि

जिला-परिषद् के वे सदस्य; जो अपने पद की हैसियत से परिषद् के सदस्य हैं, तबतक सदस्य बने रहेंगे, जबतक वे अपने पद पर रहेंगे। अन्य सदस्यों—निर्वाचित तथा संवाचित के कार्य की अवधि ३ साल की होगी।

पदाधिकारी

प्रत्येक जिला-परिषद् का एक मुख्य अधिकारी होगा, जो अध्यक्ष कहा जायगा। इसके अलावा, एक उपाध्यक्ष भी रहेगा। इन पदाधिकारियों का चुनाव जिला परिषद् के सदस्यों द्वारा होगा। किन्तु, राज्य के विधान-मण्डल या संघ की संसद् का कोई सदस्य इन पदों के लिए नहीं चुना जा सकता। इन पदाधिकारियों की कार्यावधि ३ साल की होगी।

इनके अलावा जिला विकास-पदाधिकारी जिला-परिषद् का सचिव होगा। जिला-परिषद् के निर्णयों के अनुसार वही परिषद् का कार्य चलायेगा।

परिषद्‌ के कार्य

जिला-परिषद् के मुख्य कार्य नीचे दिये जाते हैं—

(१) पंचायत समितियों के बजट की जांच करना तथा इसे मंजूर करना।

(२) सरकार से प्राप्त रुपये को पंचायत-समितियों के बीच ठीक तरह से बांटना।

(३) पंचायत-समितियों को उनकी योजनाओं की पूर्त्ति में सहायता करना।

(४) ग्राम-पंचायत तथा पंचायत-समिति के आपस के सम्बन्ध को ठीक रखना।

(५) प्रखण्डों में होनेवाले विकास के कार्यों का देख-रेख करना।

(६) जिले के विकास के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देना।

(७) जिले में आवश्यक आँकड़ों का संग्रह करना।

(८) जिले में व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

(९) जिला-परिषद् के कार्य की योजना बनाना तथा बजट तैयार करना।

जिला-परिषद्‌ की आय के साधन

उपर्युक्त कार्यों को करने के लिए जिला-परिषद् को काफी रुपये की जरूरत पड़ेगी। ये रुपये उसे नीचे लिखे स्रोतों से प्राप्त होंगे—

(१) केन्द्रीय या राज्य-सरकार से प्राप्त अनुदान।

(२) अखिल-भारतीय संस्थाओं से प्राप्त अनुदान।

(३) पंचायत-समितियों या जिले के लोगों से प्राप्त दान।

(४) राज्य-सरकार से स्वीकृत किया हुआ राजस्व का कोई अंश।

(५) जिला-परिषद् द्वारा लगाये गये कर।

यदि इनसे पूरा खर्च न चले, तो जिला-परिषद् राज्य-सरकार से ऋण ले सकती है।

राज्य-पंचायत बोर्ड

ग्राम-पंचायतों, पंचायत-समितियों तथा जिला-परिषदों के कार्यों की देख-रेख के लिए राज्य-पंचायत-राज बोर्ड होगा। इसमें कुल १५ सदस्य होंगे। ये सदस्य अपना एक अध्यक्ष चुनेंगे, जो राज्य-पंचायत-राज बोर्ड का अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष की कार्यावधि १ वर्ष की होगी। राज्य-सरकार के स्थानीय स्वायत्तशासन-विभाग का सचिव इस बोर्ड का सचिव होगा। यह बोर्ड राज्य-सरकार को ग्राम-पंचायतों, पंचायत-समितियों, जिला-परिषदों आदि के सम्बन्ध में उचित सलाह भी देगी।

अभ्यास

(१) जिला-परिषद् का संगठन कैसे होता है?
(२) जिला-परिषद् के पदाधिकारी कौन-कौन होते हैं?
(३) जिला-परिषद् के मुख्य कार्य कौन-कौन हैं?
(४) जिला-परिषद् की आय किन-किन साधनों से प्राप्त होती है?
(५) राज्य-पंचायत-राज बोर्ड क्या है? इसका संगठन कैसे होता है? इसके कार्य क्या हैं?

अध्याय ६

नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) और निगम (कारपोरेशन)

नगरपालिका का संगठन

नगर अथवा शहर की स्थानीय स्वायत्तशासन-संस्था को नगरपालिका या म्युनिसिपैलिटी कहते हैं। ऐसे सभी शहरों में, जहाँ की जनसंख्या पाँच हजार से अधिक है, नगर-पालिकाओं की स्थापना होती है। बिहार तथा उड़ीसा नगर-पालिका-अधिनियम (१९२२) तथा उसमें समयानुसार किये गये संशोधनों के अनुसार बिहार-राज्य में इनका संगठन हुआ है।

जिला-बोर्ड की तरह नगरपालिका का काम भी एक बोर्ड द्वारा संचालित किया जाता है। नगरपालिका-बोर्ड के सदस्यों का चुनाव उस नगर के इक्कीस वर्ष से ऊपर के ऐसे सभी स्त्री-पुरुषों द्वारा किया जाता है, जो पागल या दिवालिये न हों और चोरी-डकैती आदि के अपराध में दण्डित न हों। नगरपालिका का सदस्य चुने जाने के लिए किसी व्यक्ति में मतदाता की उपर्युक्त सभी योग्यताएं होनी चाहिए। साथ ही उसे उस

राज्य-सरकार का वेतनभोगी कर्मचारी नहीं होना चाहिए। उसे नगरपालिका का कर्मचारी या ठीकेदार नहीं होना चाहिए। उसे पढ़ा-लिखा भी होना चाहिए।

निर्वाचन प्रत्येक पाँच साल पर होता है। इसके लिए नगर को कई परिमण्डलों या प्रतिपाल्यों (वार्डों) में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड के प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित कर दी जाती है। प्रत्येक परिमण्डल या प्रतिपाल्य की एक निर्वाचक-नामावली (अर्थात्, वहाँ के मतदाताओं की सूची) रहती है, और उसी के आधार पर निर्वाचन होता है। किसी भी नगरपालिका में २० से कम या ८० से अधिक सदस्य साधारणतः नहीं हो सकते। इन सदस्यों का, अधिक-से-अधिक, पाँचवाँ भाग सरकार द्वारा मनोनीत होता है और बाकी सदस्य चुने जाते हैं। नगरपालिका के सदस्य नगरपाल (म्युनिसिपल कमिश्नर) कहलाते हैं। नगरपाल, अपने बीच से, एक चेयरमैन या अध्यक्ष तथा एक वाइस-चेयरमैन या उपाध्यक्ष चुनते हैं। किसी-किसी नगरपालिका में पदाधिकारियों के अलावा एक सभापति (प्रेसिडेण्ट) भी होता है।

नगरपालिका के कार्य

नगरपालिका और जिला-बोर्ड के कार्य बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। नगरपालिका के कार्य-क्षेत्र के भीतर शहर के सार्वजनिक जीवन के प्रायः सभी अंग माने जाते हैं। जनता के

स्वास्थ्य की देखभाल करना, शिक्षा का प्रबन्ध करना, सफाई का इन्तजाम करना, जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा का प्रबन्ध करना आदि इसके मुख्य काम हैं। यह आवागमन की सुविधा के लिए सड़क और पुल बनवाती है और उनकी देख-रेख करती है तथा अकाल, बाढ़ या अन्य विपत्तियों के समय नगरवासियों की सहायता करती है। इसके द्वारा शहर में टीका या सूई लगवाने का प्रबन्ध किया जाता है, बाजारों और हाटों की निगरानी होती है, स्कूल खोले जाते हैं तथा नगर की सवारियों के लिए नियम बनाये जाते हैं। सर्वसाधारण की सुविधा के लिए नगरपालिकाएं पार्क या उद्यान बनवाती हैं, अस्पताल तथा औषधालय खुलवाती हैं तथा सर्वसाधारण के मनोरंजन के लिए खेल-कूद एवं शिक्षा की व्यवस्था करती हैं। इन्हें जनता के ज्ञान-विकास के लिए पुस्तकालय और संग्रहालय (अजायब-घर) खोलने का अधिकार है। ऊपर दिये गये कामों को करने के लिए नगर-पालिका को कई तरह के अधिकार दिये गये हैं। यह समय-समय पर आज्ञाएं (अध्यादेश) निकालती है, नियम बनाती है और जो उसका उल्लंघन करता है, उस पर जुरमाना किया जाता है और मुकदमा भी चलाया जाता है। नगरपालिकाएं पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हैं। राज्य-सरकार को उनके लिए नियम बनाने का, उनका निरीक्षण करने का, उनकी सीमाओं को बढ़ाने या घटाने का और असन्तोषजनक कार्यों के कारण उन्हें तोड़ने का भी अधिकार प्राप्त है।

नगरपालिका की आय

ऊपर के कामों को ठीक से करने के लिए नगरपालिका को रुपये की जरूरत पड़ती है। यह रुपया कहाँ से आता है? इनके नीचे दिये गये कुछ साधन हैं (क) नगरपालिका-कर, जैसे चुंगी, मकान और जमीन का कर, जानवरों पर कर; रोशनी-कर, पानी-कर आदि। (ख) नगरपालिका-शुल्क—जैसे विद्यालय-शुल्क, किसी काम के लिए अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) देने या उसे नया करने की शुल्क, किराये पर चलनेवाली सवारियाँ तथा उनमें जोते जानेवाले जानवरों की पंजीयन-शुल्क (रजिस्ट्री-फीस) आदि। (ग) कुछ नगरपालिकाएँ बाजार-हाट बनवाती हैं और उनकी दूकानें किराये पर देती हैं। कुछ अपनी बिजली-कम्पनी खोलती हैं और उससे काफी आय होती है। (घ) आवश्यकतानुसार किसी भी नगरपालिका को राज्य-सरकार आर्थिक सहायता देती है और इससे भी काम न चले, तो वह बड़े-बड़े स्थायी काम के लिए, सरकार से ऋण भी ले सकती है। प्रत्येक नगरपालिका की अपनी एक निधि (फंड) रहती है, जिसे नगरपालिका-निधि (म्युनिसिपल फंड) कहते हैं।

भारतीय नगरपालिकाएँ अपनी आय का अधिकांश उन सार्वजनिक हित-सम्बन्धी कामों में खर्च करती हैं, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है।

कारपोरेशन या निगम

बड़े-बड़े शहरों में कारपोरेशन या निगम की व्यवस्था है; जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पटना आदि। नगरपालिका का बड़ा रूप है निगम और इसे नगरपालिका से अधिक अधिकार प्राप्त है। साथ ही, इसकी आय भी नगरपालिका से अधिक रहती है, और सरकारी सहायता भी इसे ज्यादा मिलती है।

इसके सदस्य सभासद (कौंसलर) कहलाते हैं, जिनमें से अधिकांश उस शहर के निवासियों द्वारा चुने जाते हैं और कुछ राज्य-सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं। ये सदस्य निगम के प्रधान को चुनते हैं, जिसे महापौर या निगमाध्यक्ष (मेयर) कहते हैं। महापौर की सहायता के लिए एक उप-महापौर भी होता है। महापौर, उप-महापौर या निगम के अन्य सदस्यों को कोई वेतन नहीं मिलता। निगम के कार्य नगरपालिका-सदृश ही होते हैं, बल्कि इससे भी अधिक।

पटना-निगम

बिहार-राज्य की राजधानी पटना में एक निगम की स्थापना हुई है। निगम परिषद् (कारपोरेशन-कौंसिल) में ५२ सभासद (कौंसिलर) हैं, जो निम्नलिखित विभिन्न तरीकों द्वारा निर्वाचित या मनोनित किये जाते हैं—

(क) ३७ सभासदों का निर्वाचन नगर के ३७ प्रतिपाल्यों (वार्डों) के मतदाताओं द्वारा होता है।

(ख) बिहार वाणिज्य-मंडल (बिहार चेम्बर ऑफ् कॉमर्स) पटना-विश्वविद्यालय के पटना-निवासी पंजीकृत स्नातकों (रजिस्टर्ड ग्रेजुएटों) तथा पटना के पंजीकृत श्रमिक-संघ (रजिस्टर्ड ट्रेड युनियनों) द्वारा निर्वाचित एक-एक सभासद।

(ग) तीन सभासदों को राज्य-सरकार मनोनीत करती है।
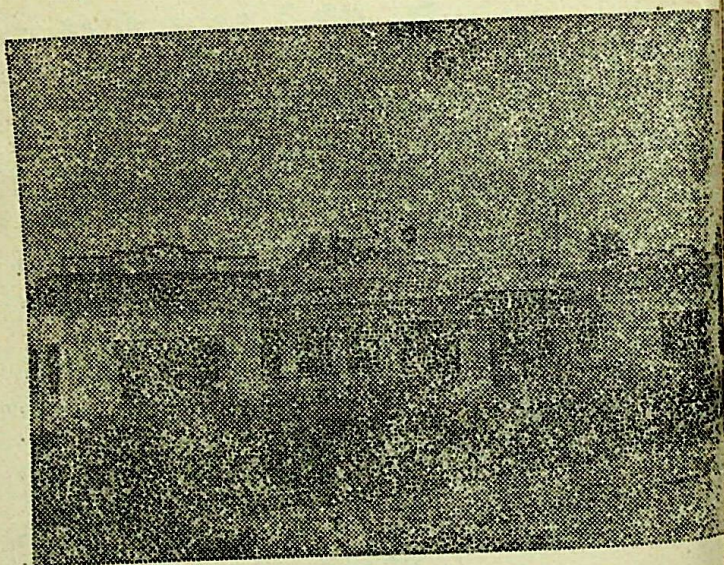
पटना निगम-भवन

(घ) लोक-स्वास्थ्य के निदेशक तथा मुख्य अभियन्ता, लोक-निर्माण-विभाग के मुख्य अभियन्ता, तथा पटना विकास-न्यास (इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट) के सभापति अपने-अपने पद के कारण निगम के सभासद मनोनीत होते हैं।

(ङ) बाकी पाँच सभासदों का निर्वाचन ऊपर के (क), (ख), (ग) और (घ) में बतलाये गये निर्वाचित या मनोनीत सभासद ही करते हैं।

नगरपालिका के मतदाताओं के लिए जिन-जिन योग्यताओं की जरूरत पड़ती है, उन्हीं की जरूरत निगम के लिए भी है।

निगम अपनी सालाना बैठक में, अपने सभासदों में से एक महापौर और एक उप-महापौर चुनता है। इनकी अवधि एक वर्ष की होती है। इनके अतिरिक्त महापौर की सलाह से राज्य-सरकार एक कार्यापालक अधिकारी (एक्जिक्यूटिव अफसर) पाँच वर्षों के लिए नियुक्त करती है। इन्हीं तीन अधिकारियों द्वारा निगम के दैनिक कार्य सम्पादित होते हैं। निगम का निर्वाचन प्रति पाँचवें वर्ष हुआ करता है।

निगम के कार्य

पटना-निगम के कार्य नागरिक जीवन के प्रायः सभी पहलुओं से सम्बद्ध हैं। नगर की सफाई और स्वच्छता का प्रबन्ध करना, मिडल तक की शिक्षा, रोशनी, पानी इत्यादि का प्रबन्ध करना, लोगों के स्वास्थ्य की देख-रेख आदि विभिन्न प्रकार के कार्य इसके अधीन हैं। इसके कार्य साधारणतः नगरपालिका के सदृश ही हैं। इसके खर्च के लिए नागरिकों पर विभिन्न प्रकार के कर इसके द्वारा लगाये जाते हैं।

समय-समय पर राज्य-सरकार द्वारा भी इसे आर्थिक सहायता मिलती है।

अभ्यास

(१) नगरपालिका का संगठन कैसे होता है ?
(२) नगरपालिका के कार्य और उसकी आय के मुख्य साधनों पर प्रकाश डालिए।
(३) निगम से आप क्या समझते हैं ? पटना-निगम के संगठन पर एक टिप्पणी लिखिए।

अध्याय ७

स्थानीय स्वायत्तशासन-संस्थाओं के सदस्यों के कर्त्तव्य

स्थानीय स्वायत्तशासन-संस्थाओं का प्रत्येक सदस्य स्वयं राष्ट्र का एक नागरिक भी होता है। अतः, यह आवश्यक है कि वह अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से समझे। प्रत्येक सदस्य अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र के नागरिकों का प्रतिनिधि होता है और इसीलिए उसकी जिम्मेदारी बहुत अधिक बढ़ जाती है।

सर्वप्रथम, प्रत्येक सदस्य के लिए एक आदर्श नागरिक बनना आवश्यक है। उसे समय पर जिला-परिषद् या नगरपालिका का कर चुका देना चाहिए। उसे अपने को इस प्रकार का बनाना चाहिए, जिससे कि और लोग उसका अनुकरण करें।

प्रत्येक सदस्य अपने मतदाताओं का प्रतिनिधि होता है। उसे सच्चा प्रतिनिधि बनना चाहिए। उसका काम निर्वाचन के समाप्त होते ही खतम नहीं होता, बल्कि वास्तविक काम तो निर्वाचन के बाद ही आरम्भ होता है। उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र से सदा सम्पर्क रखना चाहिए। वहां के लोगों की आवश्यकताओं को सदा जानते रहना चाहिए और उनकी पूर्त्ति की चेष्टा करनी चाहिए। उसे याद रखना चाहिए कि स्थानीय स्वायत्तशासन का संगठन केवल अधिक-से-अधिक लोक-हित के लिए ही किया जाता है। अतः उसे इन संस्थाओं के आदर्श बनाये रखने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए। उसे अन्याय, पक्षपात, दलबन्दी, भ्रष्टाचार आदि से अलग रहकर, जन-हित में लगा रहना चाहिए। प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत स्वार्थ और जाति-भावना को ठुकराना चाहिए। उसे दूसरों के सुख में ही अपना सुख समझना चाहिए और सबको अपना भाई समझकर, ईमानदारी और सचाई से अपना काम करना चाहिए। ऐसे ही निःस्वार्थ और कर्मठ नागरिकों से जन-कल्याण सम्भव हो सकेगा, और स्थानीय स्वायत्तशासन भी सफल हो सकेगा। जन-सेवा के लिए अपने हितों का बलिदान भी करना पड़ता है, और इस

सिद्धान्त पर चलनेवाले सदस्य ही आदर्श स्थापित कर सकते हैं।

अभ्यास

(१) अपने और अपने मतदाताओं के प्रति सदस्यों का क्या कर्त्तव्य है?
(२) आदर्श सदस्य कौन हो सकता है ?
(३) यदि आपको जिला-परिषद् का सदस्य चुन लिया जाय, तो आपका क्या कर्त्तव्य होगा ?

अध्याय ८

सरकार और उसके भेद

सरकार क्या है ?

ऊपर के अध्यायों में हमलोगों ने स्थानीय स्वायत्तशासन और उसकी संस्थाओं से परिचय प्राप्त कर लिया है। अब हमें अपने राज्य की सरकार के विषय में जानना है। परन्तु, इसके पूर्व हमें यह जानना उचित है कि सरकार का क्या अर्थ होता है और उसके विभिन्न प्रकार कौन-कौन-से हैं। याद रहे कि राज्य और सरकार दोनों एक ही चीज नहीं है, दोनों में विभिन्नता है। सरकार किसी राज्य का वह आवश्यक अंग है

जिसके द्वारा उसके कार्य व्यवस्थित रूप से संचालित होते हैं। सरकार राज्य के यन्त्र के समान है। राज्य के समान सरकार स्थायी नहीं होती, बल्कि समय और परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ उसकी रूपरेखा भी बदलती है, अर्थात् सरकार परिवर्त्तनशील है। मानव-इतिहास के प्रारम्भ से आजतक सरकार की आकृति-प्रकृति सदा बदलती रही है। सरकार के बिना किसी भी राज्य का अस्तित्व असम्भव है। राज्य के सभी कार्यों को ठीक से चलाने के लिए सरकार की जरूरत पड़ती है। यदि सरकार न रहे, तो राज्य में अराजकता फैल जाय और सभी नागरिक अपने मन के अनुसार कार्य करने लगें, तो अशान्ति और अव्यवस्था बढ़ती ही जायगी। अतः, सरकार की उपयोगिता महान् है। यह कहा जा सकता है कि यदि सरकार नहीं, तो सुव्यवस्थित समाज भी नहीं और राज्य भी नहीं।

अब हमें सरकार के प्रमुख भेदों का परिचय प्राप्त करना है। सरकार के कई भेद या रूप होते हैं, परन्तु हमलोग यहाँ राजतंत्र, लोकतंत्र, अधिनायकतंत्र (तानाशाही) और साम्यवाद के विषय में ही एक-एक कर अध्ययन करेंगे।

राजतंत्र

जब किसी राज्य की सरकार राजा के हाथों में केन्द्रित रहे, तो उसे 'राजतंत्र' का नाम दिया जाता है। ऐसे शासन का

सर्वोच्च अधिकारी राजा ही होता है, जो अपनी इच्छा के अनुसार देश का काम-काज चलाता है। राजा ही कानून बनाता है और उसी कानून के अनुसार प्रजा को चलना पड़ता है। जो राजा की आज्ञा नहीं मानते, उन्हें सजा दी जाती है। राजा के मरने के बाद उसका पुत्र या उसी के वंश का कोई दूसरा व्यक्ति राजा होता है। भारत में तो इस प्रकार की सरकार बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है, और अँगरेजी शासन-स्थापना के पहले तक चलती आयी है। हमारे देश में कई प्रसिद्ध राजे हो चुके हैं; जैसे रामचन्द्र, चन्द्रगुप्त, अशोक, कनिष्क, हर्षवर्द्धन, शेरशाह, अकबर, शिवाजी, आदि। इसी प्रकार संसार के इतिहास में भी अनेक बड़े-बड़े राजे हुए हैं। हमारे देश में राजा का आदर्श काफी ऊँचा बताया गया है। राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा की सुख-शान्ति को बढ़ावें, उन्हें बाहरी आक्रमणों से बचावें और भीतरी अराजकता एवं अशान्ति को रोकें। हमारे यहाँ तो 'रामराज्य' का आदर्श सर्वदा उपस्थित किया जाता है। कहा जाता है कि रामचन्द्रजी के राज्य में न कोई गरीब था न कोई दुःखी, और न कोई पापी या अपराधी ही था। राजा राम सर्वदा प्रजा की भलाई के लिए प्रयत्न करते रहे। वे अपनी प्रजा के लिए पिता से भी बढ़कर थे।

परन्तु, विश्व-इतिहास को पढ़ने से यह मालूम हो जाता है कि सभी देशों में और सभी कालों में राम के सदृश ही राजा नहीं हुए हैं। अधिकांश ऐसे ही राजा हुए हैं, जो केवल अपना ही सुख और धन बढ़ाने में लगे रहे, और प्रजा के ऊपर मनमाना

शासन करते रहे। उनके सामने कोई भी उच्च आदर्श नहीं था। अपने सुख और आनन्द के लिए वे प्रजा को सताने और उनका धन लूटने में तनिक भी नहीं हिचकते थे। राजतन्त्र की सबसे बड़ी कमजोरी यही है और इससे राजा या प्रजा का नाश अन्त में जरूर होता है। फ्रांस में अठारहवीं शताब्दी में लूई सोलहवां तथा रूस में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जार निकोलस नाम के ऐसे ही अत्याचारी राजा हुए। वहाँ की प्रजा ने क्रान्ति कर दी और अन्त में उनका नाश करके, सत्ता अपने हाथों में ले ली। इस तरह की सरकार को 'अत्याचारी राजतन्त्र कहते हैं।

आधुनिक युग में भी कई देशों में राजतन्त्र जीवित है, परन्तु वहाँ के राजाओं की शक्तियाँ बहुत ही सीमित कर दी गई हैं। इन राजाओं को जनता के प्रतिनिधियों की राय से शासन करना पड़ता है। वर्त्तमान काल में इंगलैंड में ऐसा ही राजतन्त्र है। अपने पड़ोसी देश नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान आदि में भी ऐसा ही शासन है। ये राजे पहले के राजाओं की तरह निरंकुश शासक नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार की सरकार को 'वैधानिक राजतन्त्र' कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं की राजतन्त्र का भविष्य अन्धकारपूर्ण है। कई देशों से राजतन्त्र शीघ्रतापूर्वक मिटता जा रहा है और जहाँ है भी, वहाँ के राजा की शक्ति नहीं के बराबर है।

लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र

लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र राजतन्त्र का ठीक उल्टा रूप है। लोकतन्त्र ऐसी सरकार को कहते हैं, जिसमें राज्य की सर्वश्रेष्ठ शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों में न रहकर अनेक व्यक्तियों के हाथों में रहती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र में शासनाधिकार समस्त जनता के हाथों में रहता है। जनता की, जनता द्वारा और जनता के लिए जो सरकार होती है, उसे लोकतन्त्र कहते हैं। इसमें लोकमत द्वारा शासन चलता है, जिसमें जनता स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा सरकार चलाती है।

लोकतान्त्रिक सरकार दो तरह की होती है—एक को हम 'प्रत्यक्ष लोकतन्त्र' और दूसरी को 'प्रतिनिधि-लोकतन्त्र' कह सकते हैं। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र में देश-भर के सभी नागरिक एक स्थान पर इकट्ठा होकर अपने शासन के लिए कानून बनाते हैं। परन्तु ऐसी सरकारें केवल ऐसे ही देशों के लिए सम्भव हैं, जहाँ की जनसंख्या बहुत ही कम है और जिसका क्षेत्रफल भी छोटा है। प्राचीन काल के यूनानी नगर-राज्य में, जिसकी जनसंख्या बहुत ही कम थी, यह प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु आज के राज्य प्रायः बड़े विशाल हो गये हैं, और उनके नागरिकों के लिए यह सम्भव नहीं कि वे किसी एक जगह पर एकत्र होकर शासन-कार्य चला सकें। हाँ, आज भी स्वीटजरलैंड-राज्य के कुछ छोटे प्रान्तों या 'कैण्टस' में यह प्रणाली चल

रही है। लेकिन भारत, रूस, अमेरिका, चीन-जैसे विशाल राज्यों के लिए क्या ऐसी सरकार सम्भव है ? कदापि नहीं। अतः अधिकांश लोकतान्त्रिक राज्य में प्रतिनिधियों द्वारा ही शासन होता है। ऐसे राज्यों में जनता स्वयं शासन करके अपने प्रतिनिधियों को निश्चित काल के लिए चुनती है, और उन्हें शासन-भार सौंपती है। परन्तु इन प्रतिनिधियों पर जनता का नियन्त्रण सदैव बना रहता है, और यदि वे ठीक से काम नहीं करते हैं, तो कई राज्यों में उन्हें हटा देने की व्यवस्था रहती है। ऐसे शासन में प्रतिनिधियों का निर्णय स्वयं जनता का निर्णय समझा जाता है। इसमें सभी बालिक स्त्रियों और पुरुषों को समान मताधिकार मिलता है और सबके मतों (वोटों) का बराबर मूल्य होता है। हमारा देश भी ऐसा ही एक लोकतांत्रिक देश है और यहाँ २१ वर्ष से ऊपर के सभी स्त्री-पुरुषों को, जो पगले, दिवालिये या बड़े अपराधी नहीं हैं, मत देने का अधिकार दिया गया है। सन् १९५२, १९५७ और १९६२ ई० के लोकतांत्रिक निर्वाचनों में करोड़ों भारतीयों ने मत देकर दुनिया के सामने एक अनोखा उदाहरण रखा है। लोकतांत्रिक शासन-पद्धति को अपनानेवाले राष्ट्रों में अमेरिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किसी भी लोकतांत्रिक सरकार की सफलता के लिए नीचे लिखी गई अवश्यकताओं का होना जरूरी है—

(क) देश की जनता को लोकतन्त्र की सफलता के लिए तत्पर रहना चाहिए, और इसके लिए उसे बड़े-से-बड़े बलिदान के

लिए तैयार रहना चाहिए। जनता को चाहिए कि वह केवल योग्य व्यक्तियों को ही अपना प्रतिनिधि चुने और इसी प्रकार योग्य व्यक्ति प्रतिनिधि बनने के लिए तैयार रहें।

(ख) लोकतन्त्र के लिए बहुत जरूरी है कि वहाँ के सभी नागरिक या अधिकांश नागरिक शिक्षित हों, और अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों को समझते हों, शिक्षित हुए बिना राज्य की समस्याओं को ठीक से समझना कठिन है। जिस लोकतन्त्र की जनता जितनी अधिक शिक्षित और समझदार रहेगी, वह लोकतन्त्र उतना ही अधिक सफल होगा।

(ग) लोकतन्त्र की जनता को देश की सभी समस्याओं को राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण से देखना चाहिए और राजनीतिक दलों का संगठन भी इसी आधार पर होना उचित है।

(घ) लोकतन्त्र में जनता के प्रतिनिधियों के पास इतना समय और ज्ञान होना चाहिए कि वे राजनीतिक समस्यओं को ठीक से समझ सकें तथा उसमें उचित भाग ले सकें। उनका नैतिक स्तर भी काफी ऊँचा होना चाहिए।

इन सब आधारों पर निर्मित लोकतन्त्र ही सफल लोकतन्त्र हो सकता है और ऐसे शासन द्वारा अत्यधिक जन-कल्याण सम्भव है। लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली में नागरिक अपने को राष्ट्र का एक प्रमुख अंग समझने लगा है और फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। यह लोकतन्त्र की एक महान् विशेषता है।

भारत में लोकतान्त्रिक शासन की प्राचीन परम्परा

आज भारत एक गणतान्त्रिक लोकतन्त्र है। परन्तु लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति भारतीय इतिहास में कोई नई चीज नहीं है। प्राचीन भारत में भी कई लोकतन्त्र थे, जिनका शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा होता था। ऐसे राज्यों का उल्लेख हमें बौद्ध तथा जैनधर्म के प्राचीन ग्रन्थों, पाणिनि के संस्कृत-व्याकरण, यूनानी यात्री मेगास्थनीज की पुस्तक एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री चाणक्य (कौटिल्य) के 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। वेदों में ऐसे लोकतन्त्रों का वर्णन नहीं है। सम्भवतः इनका उदय और विकास उत्तर वैदिक युग के बाद ही हुआ। इन लोकतन्त्रों को 'गण' अथवा 'संघ' का नाम दिया गया था। ये गणराज्य ईसा के पूर्व लगभग ६० ई० से गुप्तकाल तक, अर्थात् ईसा के बाद की पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक कायम रहे। इन ग्यारह सौ वर्षों के अन्दर कई लोकतंत्र तो राजतन्त्रों द्वारा हड़प लिये गये और कितने नये-नये भी स्थापित हुए। मौर्य और मुख्यतः गुप्त राजाओं ने तो इन लोकतन्त्रों का गला ही दबा दिया और ये धीरे-धीरे सदा के लिए लुप्त हो गये।

बौद्ध-ग्रन्थों में जिन लोकतन्त्रों का उल्लेख मिलता है, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—(क) कपिलवस्तु (नेपाल की तराई) के शाक्य, (ख) वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ के निकट) के लिच्छवि, (ग) रामग्राम के कोलिय, (घ) मिथिला (दरभंगा जिला) के विदेह, (ङ) गोरखपुर से चम्पारन तक

फैले हुए मल्ल और पिप्पलोवन के मोरिय। लिच्छवि और विदेह के राज्यों को संयुक्त रूप से 'वृज्जि' या 'वज्जि' भी कहते थे। इन सबमें लिच्छवि, विदेह और मल्ल-राज्य ही अधिक शक्तिशाली तथा उन्नतिशील थे।

इन लोकतन्त्रों के संविधान, कई विभिन्नताएँ होने पर भी, लगभग एक सदृश ही थे। इनमें नागरिकों को काफी अधिकार प्राप्त थे। उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अच्छा प्रबन्ध था। साधारणतः इन राज्यों के सभापति को 'राजा' और उपसभापति को 'उप-राजा' कहा जाता था। शासन के प्रधान चुने जाते थे। कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन एक चुने हुए ही राजा थे। लिच्छवि-लोकतन्त्र में तीन प्रधान पदाधिकारी थे, जो चुने हुए ही थे। जैसे सभापति (राजा), उप-सभापति (उप-राजा) और अर्थमन्त्री (भण्डारी)। इनके अतिरिक्त, आज-जैसा एक संघ या सभा (असेम्बली) भी होती थी, जिसमें जनता के प्रतिनिधि राज्य-भर के लिए कानून बनाते थे। इन प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार सभी वयस्कों को था। मत रंगीन टिकटों द्वारा लिया जाता था और इन टिकटों को समझाने के लिए अलग कर्मचारी रहते थे, जो इन्हें इकट्ठा भी करते थे। सभा में सभापति की आज्ञा से कोई भी प्रस्ताव रखा जाता था। किसी भी प्रस्ताव पर निर्णय मताधिक्य (अधिक वोट) द्वारा ही होता था, लेकिन इसके साथ-ही-साथ एक निश्चित संख्या तक मत मिलना आवश्यक होता था। खास-खास बातों का निर्णय समितियों द्वारा होता था। संघ, सभा या

समिति के अलग-अलग कर्मचारी थे, जो उसकी कार्यवाही को लिखते थे। इसी प्रकार न्याय-शासन के लिए भी उचित व्यवस्था थी।

लोकतन्त्र में शांति-स्थापना के लिए भगवान् बुद्ध का उपदेश

इस सम्बन्ध में हमें भगवान् बुद्ध के उपदेशों को नहीं भूलना चाहिए, जिन्हें लोकतन्त्रों की शांति एवं उन्नति के लिए उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनन्द को दिया था। भगवान् बुद्ध से यह पूछा गया कि किस तरह मगध-राज्य का आधिपत्य 'वज्जि'-लोकतन्त्र (लिच्छवि और विदेह-लोकतन्त्रों का संयुक्त नाम) पर कायम हो सकेगा, तो उन्होंने आनन्द को यह बतलाया कि जब तक 'वज्जि' गणराज्य के नागरिक, (क) राज्य-शासन, सुचारु रूप से, संघ या
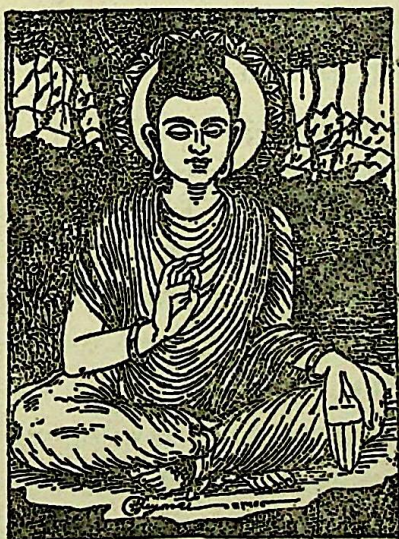
महात्मा बुद्ध

सभा द्वारा करते रहेंगे, (ख) वहाँ के लोग आपस में एकता रखेंगे, (ग) अपनी परम्पराओं और वहाँ के स्थापित नियमों के

विरुद्ध नहीं जायेंगे, (घ) अपने से बड़ों और बुद्धिमानों का आदर करेंगे, (ङ) स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा करेंगे और उनपर बलात्कार नहीं होने देंगे, (च) स्थापित धर्म और धार्मिक संस्थाओं की देख-भाल करेंगे, तब तक उनकी शक्ति बनी रहेगी और उनपर किसी का भी आधिपत्य कायम नहीं हो सकेगा। बुद्ध के 'सप्तशील' सिद्धान्त आज भी अमर हैं, और ये हमारे आधुनिक लोकतन्त्र के लिए पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। इन सिद्धान्तों से यह साफ-साफ मालूम हो जाता है कि पारस्परिक प्रेम, एकता, चरित्र-बल और कर्त्तव्यपरायणता किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक होती है।

अधिनायकतन्त्र या तानाशाही

ऐसी सरकार में राज्य की सम्पूर्ण शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित रहती है। उसे तानाशाह या अधिनायक (डिक्टेटर) कहा जाता है। तानाशाह ही राज्य का सर्वेसर्वा होता है और वह साधारणतः तलवार के बल पर शासन करता है। उसकी शक्ति से सभी डरते हैं। अधिनायक किसी नये आदर्श की सफलता या व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए ही काम करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले दो बड़े-बड़े तानाशाह पैदा हुए थे—इटली का मुसोलिनी और जर्मनी का हिटलर। इन्हीं दो तानाशाहों की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण, मुख्यतः समूचे संसार को एक महान् युद्ध में झुलसना पड़ा। अधिनायकतन्त्र सैन्यवाद के आधार पर ही बनता है और इसका

एक मुख्य ध्येय रहता है—साम्राज्यवाद। ऐसे शासन में स्वतन्त्र भाषण, समाचार-पत्रों की आजादी, सभा और समुदायों के संगठन के अधिकार आदि छीन लिये जाते हैं। इसमें व्यक्ति-विशेष का महत्त्व कम हो जाता है, और वह राज्य के लिए ही जीवित रहता है, न कि राज्य इसके लिए। अधिनायकतन्त्र और लोकतन्त्र, सरकार के दो अन्तिम छोर हैं, और दोनों में काफी विरोध है। अधिनायकतन्त्र में जनता अपने स्वतन्त्र विचारों को खो बैठती है और इससे राष्ट्र का बौद्धिक विकास रुक जाता है। ऐसी सरकार जन-हित के लिए उपयुक्त नहीं है। राजतन्त्र और अधिनायकतन्त्र दोनों में राज्य-शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथों में रहती है, परन्तु ये दोनों एक ही नहीं हैं, दोनों में काफी भेद है। राजतन्त्र में सिंहासन वंशपरम्परागत अधिकार से होता है, परन्तु अधिनायकतन्त्र में व्यक्तित्व के बल पर कोई भी व्यक्ति राज्य-प्रभुसत्ता अपने हाथों में कर सकता है। आधुनिक युग में राजा को वैधानिक रूप से शासन करना पड़ता है। उसकी शक्तियाँ सीमित हो गई हैं परन्तु तानाशाह कभी अपनी शक्ति पर नियन्त्रण सहन नहीं कर सकता है। वैधानिक राजतन्त्र में राजा प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की राय से शासन चलाता है, और लोकमत के अनुसार चलने की सदा चेष्टा करता है। परन्तु, अधिनायकतन्त्र में इस ओर ध्यान भी नहीं दिया जा सकता। सच तो यह है कि तानाशाह, साधारणतः लोकमत को बलपूर्वक अपने पक्ष या अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है।

साम्यवाद

साम्यवाद लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर चलते हुए उससे भी आगे बढ़ जाता है। साधारणतः यह देखा जाता है कि लोकतान्त्रिक सरकार की चेष्टा लोगों के राजनीतिक अधिकारों को ही समान करने की रहती है। परन्तु नागरिकों में आर्थिक बराबरी नहीं हो पाती। अमीर और गरीब की समस्या किसी-न-किसी रूप में बनी ही रहती है। कारण यह है कि जबतक सभी लोगों में आर्थिक बराबरी न हो जाती, राजनीतिक बराबरी से बहुत अधिक फायदा नहीं हो सकता। जिसके पास काफी धन रहेगा, वह तो राजनीतिक जीवन में भी, गरीबों से आगे ही रहेगा। अतः धन की विषमता को हटाना जरूरी है। साम्यवादियों का कहना है कि सर्वप्रथम लोगों का आर्थिक स्तर ही बराबर कर देना चाहिए, जिससे न कोई जन्म से अमीर हो और न गरीब। जन्म से सब बराबर रहें, सबको बराबर सुविधाएं मिलें, सब लोग अपनी शक्ति के अनुसार काम करें और राज्य सबकी उचित आवश्यकताओं की पूर्त्ति करे। जो काम करने से लाचार हों, उनकी देख-भाल सरकार करे। रोगियों की चिकित्सा और लड़कों को पढ़ाने की व्यवस्था भी सरकार ही करे। साम्यवादी समाज में एक ही वर्ग रहेगा—कमानेवालों का और उससे आर्थिक विषमता नहीं रहने पायेगी। ऐसी व्यवस्था के अधीन सबकी बराबर उन्नति होगी और सबके लिए कानून एवं न्याय

समान रहेंगे। सबको उचित पारिश्रमिक और उचित अवकाश मिलेगा।

ऐसे विचारों के समर्थक जब अपने प्रतिनिधियों को चुनकर ऐसी व्यवस्था की स्थापना करते हैं, तो उसे साम्यवादी व्यवस्था कहते हैं। साम्यवादियों का तो यहाँ तक कहना है कि उनके बतलाये रास्ते पर चलने से धीरे-धीरे मानव-समाज वर्गहीन हो जायगा और अन्त में किसी राज्य और उसे चलाने के लिए किसी सरकार की आवश्यकता नहीं रह जायगी। सन् १९१७ ई० में रूस के किसानों और मजदूरों ने क्रांति करके वहाँ से पूँजीवादी शासन को उखाड़ फेंका और साम्यवादी व्यवस्था की नींव डाली। द्वितीय युद्ध के बाद से सारी दुनिया में समाजवाद या साम्यवाद का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। आजकल तो चीन की व्यवस्था और वहाँ का समाज भी इसी ढंग का है। इनके अलावा यूरोप और एशिया के कई देशों में भी साम्यवाद का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। अबतक लोगों की यह धारणा थी कि बिना क्रांति के इस प्रकार की व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती, परन्तु अब तो बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ मानने लगे हैं कि बिना खून-खराबी के, कानूनों द्वारा, धीरे-धीरे समाज और राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्त्तन लाये जा सकते हैं। भारत इस सिद्धान्त में ही विश्वास करता है और इसी के आधार पर अग्रसर हो रहा है।

साम्यवादी व्यवस्था के कुछ दोष भी हैं। इसमें जनता की स्वतन्त्रता काफी सीमित हो जाती है। साम्यवादी राज्य में

केवल एक ही राजनीतिक दल (पार्टी) रहता है। दल में जिन लोगों की धाक रहती है, वे ही सरकार चलाते हैं और साधारणतः वे तानाशाह बन बैठते हैं। साम्यवादी व्यवस्था में व्यक्ति के विकास के लिए उचित वातावरण नहीं मिल पाता, कारण कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। सरकार के विरुद्ध अपने विचारों को प्रकट करना संकटपूर्ण हो जाता है। इतना होने पर भी आधुनिक युग में यह देखा जा रहा है कि रूस और चीन-जैसे साम्यवादी देश दिनानुदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ते ही जा रहे हैं।

सर्वश्रेष्ठ सरकार

सरकार के प्रमुख भेदों का ऊपर वर्णन किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि इनमें सबसे अच्छी सरकार कौन है? वास्तव में सबसे अच्छी सरकार लोकतन्त्र ही है; क्योंकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है, लोकतन्त्र में शासन की बागडोर जनता के उन प्रतिनिधियों के हाथ में रहती है, जिन्हें जनता स्वयं चुनती है। ऐसी सरकार जो भी कानून बनाती है या जो भी कार्य करती है, वह जनता की भलाई के लिए ही। इसलिए लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में जनता सुख और शान्ति से रहती है। लेकिन राजतन्त्र में ऐसी बात नहीं है। यदि राजा न्यायी हुआ, तब तो जनता सुखी रह सकती है, लेकिन यदि वह निरंकुश और अत्याचारी हुआ, तो वह जनता का शोषण करता है और राजकोष को प्रजा की

भलाई में खर्च न कर अपने भोग-विलास में नष्ट करता है। ऐसे राज्य में जनता दरिद्र और दुःखी रहती है।

इसलिए आधुनिक युग में लोकतन्त्र का ही बोलबाला है। विश्व में अधिकतर देश इसी को अपनाये हुए हैं। भले ही इसकी रूप-रेखा देश और काल के मुताबिक बदलती रही है। प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ और समस्याएँ हैं और इन्हीं के अनुकूल सरकार की रूप-रेखा भी निश्चित होती है। अतः सबके लिए एक ही आदर्श नहीं रखा जा सकता। फिर भी, आधुनिक विश्व के अधिकांश राज्य लोक-तांत्रिक शासन को ही आदर्श के रूप में मानते हैं। भारत में भी ऐसी ही सरकार है।

अभ्यास

(१) 'सरकार' से क्या समझते हैं ? इसके मुख्य भेद कौन-कौन हैं ?
(२) लोकतन्त्र का अर्थ और उसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।
(३) लोकतन्त्र से क्या समझते हैं ? इसके लिए किन-किन बातों की आवश्यकता होती है ? इससे कौन-कौन लाभ हैं ?
(४) अधिनायकतन्त्र और राजतन्त्र में क्या भेद है ? अधिनायकतन्त्र के कौन-कौन दोष हैं ?
(५) साम्यवादी समाज से आप क्या समझते हैं ? ऐसी सरकार के कौन-कौन प्रमुख दोष हैं ?
(६) भारत के प्राचीन लोकतन्त्र पर एक लेख लिखिए।
(७) लोकतन्त्र में शान्ति बनाये रखने के लिए भगवान् बुद्ध के क्या उपदेश थे ?
(८) सर्वश्रेष्ठ सरकार आप किसको मानते हैं ?

अध्याय ६

स्वतन्त्र भारत का संविधान

१५ अगस्त, १९४७ ई०, को भारत स्वतन्त्र हुआ, इसके पहले ही स्वतन्त्र भारत का संविधान* बनाने के लिए एक संविधान-सभा का गठन हो गया था। इस सभा ने कठिन परिश्रम के बाद भारत का संविधान तैयार किया। यह संविधान २६ जनवरी, १९५० ई०, को लागू हुआ। संविधान की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

१. संविधान के अनुसार भारत में सम्प्रभुता-सम्पन्न गणतन्त्र की स्थापना हुई। इसलिए हमलोग प्रतिवर्ष २६ जनवरी को गणतन्त्र-दिवस मनाते हैं।

२. संविधान के अनुसार देश में संघीय शासन की व्यवस्था की गयी है। समूचे देश के लिए एक केन्द्रीय शासन की स्थापना की गयी है, जिसके जिम्मे समूचे देश से सम्बन्ध रखनेवाले विषय दिये गये हैं; जैसे देश की सुरक्षा, विदेशों के साथ सम्बन्ध, रेल, डाक,

---

* संविधान उन मौलिक नियमों के समूह को कहते हैं, जिनके अनुसार किसी राज्य का शासन होता है। राज्य का क्या उद्देश्य है, नागरिकों के क्या अधिकार हैं, राज्य और नागरिक में क्या सम्बन्ध है, राज्य का शासन कैसे होगा आदि बातें संविधान में वर्णित रहती हैं।

तार आदि। संघ के राज्यों को उन विषयों पर अधिकार दिया गया है, जिनका सम्बन्ध राज्य से ही है; जैसे शान्ति और व्यवस्था, राजस्व, स्थानीय स्वायत्तशासन, शिक्षा आदि। संघ और राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में अधिक बातें आगे कही जायँगी।

३. संघीय सरकार का अध्यक्ष राष्ट्रपति कहलाता है। राष्ट्रपति एक मन्त्रिमण्डल की सहायता से शासन करता है। मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष को प्रधान मन्त्री कहा जाता है। हमारे प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे तथा प्रथम प्रधान मन्त्री स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू।

संघ के कानून बनाने के लिए एक विधान-मण्डल है, जिसे संसद् (पार्लियामेंट) कहते हैं। संसद् में राष्ट्रपति के अतिरिक्त दो सदन हैं। पहला या निचला सदन लोक-सभा कहा जाता है। इसमें समस्त भारत की जनता के प्रतिनिधि बैठते हैं। इन प्रतिनिधियों को जनता सीधे चुनती है। मतदान देने का अधिकार देश के सभी वयस्क (जिनकी आयु २१ वर्ष की हो गयी है) स्त्री-पुरुषों को मतदान देने का अधिकार है।

संसद् का दूसरा तथा ऊपर का सदन राज्य-सभा कहलाता है। इसके सदस्य जनता द्वारा सीधे नहीं

चुने जाते, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप में भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा चुने जाते हैं।

संघ का एक न्यायालय होता है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) कहते हैं। इस न्यायालय के निर्णय अन्तिम होते हैं।

४. संघ के राज्यों के शासन का प्रधान राज्यपाल होते हैं। हर राज्य का एक राज्यपाल होता है। वह मन्त्रिमण्डल की सहायता से राज्य का शासन करता है। राज्य के मन्त्रिमण्डल के प्रधान को मुख्यमन्त्री कहते हैं।

राज्य के नियम-कानून एक विधान-मण्डल के द्वारा बनाया जाता है। विधान-मण्डल में राज्यपाल के अलावा, कहीं दो सदन तथा कहीं एक सदन होता है। हमारे राज्य में दो सदन हैं। जहां दो सदन हैं, वहां निचले सदन को विधान-सभा तथा ऊपर के सदन को विधान-परिषद् कहते हैं। जहां एक ही सदन है, वहां वह विधान-सभा कहा जाता है। राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय उच्च-न्यायालय (हाई कोर्ट) कहलाता है। उसके नीचे कई छोटे-बड़े न्यायालय होते हैं।

५. संविधान के द्वारा देश में धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना हुई है। धर्म-निरपेक्ष राज्य उस राज्य को

कहते हैं, जिसमें राज्य किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात नहीं करता। राज्य के लिए सभी धर्म बराबर माने जाते हैं तथा राज्य के नागरिकों को इस बात की आजादी रहती है कि वे अपनी इच्छा से जिस धर्म को चाहें, मानें।

६. संविधान के अनुसार देश में ऊँच-नीच, छूत-अछूत, स्त्री-पुरुष सभी में भेद-भाव खतम कर दिया गया है। राज्य में रहनेवाले सभी नागरिक बराबर माने गये हैं। सभी को समान अधिकार प्राप्त है। सभी को समान सुविधाएँ प्राप्त हैं। सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग सभी समान रीति से कर सकते हैं।

७. संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। ये अधिकार ऐसे हैं, जो सब नागरिकों को प्राप्त हैं। इन अधिकारों से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है। जैसे जीवन-रक्षा का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, अपने विचारों को प्रकट करने का अधिकार—ये सब मौलिक अधिकार हैं।

अभ्यास

(१) संविधान किसे कहते हैं ?
(२) भारत का संविधान कब लागू हुआ ?
(३) भारत के संविधान की मुख्य बातें क्या हैं ?

अध्याय १०

बिहार-राज्य का विधान-मण्डल

बिहार, भारत-संघ का एक प्रमुख राज्य है। कानून बनाने के लिए यहां दो सदनों (सभाओं) वाले विधान-मण्डल की व्यवस्था की गई है। विधान-मण्डल में राज्यपाल (गवर्नर) के अलावा, दो सभाएँ (सदन) हैं—विधान-सभा और विधान-परिषद्। विधान-सभा में ३१९ और विधान-परिषद् में ९६ सदस्य हैं। साधारणतः नियम यही है कि विधान-सभा के सदस्यों के एक-चौथाई भाग से अधिक सदस्य उस राज्य की विधान-परिषद् में नहीं रहेंगे; पर यह संख्या ४० से कम नहीं होगी।

विधान-सभा

इसके सदस्यों का चुनाव वयस्क (बालिग)-मताधिकार के आधार पर, पांच वर्षों के लिए होता है, अर्थात् उन सभी नागरिकों को, जो कम-से-कम २१ वर्ष की उम्र के हों और किसी अन्य कारण से अयोग्य नहीं ठहराये गये हों, मत या वोट देने का अधिकार प्राप्त है। चुनाव के लिए, सर्वप्रथम मत देनेवालों की सूची तैयार की जाती है और चुनाव की सब विधियां स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचन की तरह होती हैं।

लगभग प्रत्येक ७५ हजार की आबादी पर एक-एक सदस्य इस सभा में जाते हैं। हरिजनों और आदिवासियों के लिए कुछ जगहें सुरक्षित रखी गयी हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस सभा की अवधि पाँच वर्षों की होती है, परन्तु इस अवधि के पूरा होने के पहले ही, राज्यपाल द्वारा यह विघटित की जा सकती है। संकट-काल में इसकी अवधि बढ़ाई भी जा सकती है।

विधान-परिषद्

विधान-परिषद् राज्य के विधान-मण्डल का दूसरा सदन है। विधान-सभा की तरह, विधान-परिषद् ५ वर्ष में भंग नहीं होती। यह स्थायी सदन है। इसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष अपने पद से अलग हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य चुने जाते हैं।

विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्या विधान-सभा के सदस्यों की संख्या के एक-चौथाई भाग से अधिक नहीं हो सकती।

विधान-परिषद् के सदस्यों का चुनाव राज्य के नागरिकों द्वारा सीधे तौर पर नहीं होता, जैसा कि विधान-सभा के सदस्यों का होता है। परिषद् के सदस्यों का चुनाव विशिष्ट संस्थाओं अथवा व्यक्तियों द्वारा होता है। कुछ सदस्य राज्यपाल द्वारा भी मनोनीत होते हैं।

सदस्यों का चुनाव तथा मनोनयन निम्नलिखित नियमों के अनुसार होता है—

१. राज्य की स्थानीय स्वायत्तशासन की संस्थाओं के द्वारा निर्वाचित—१/३ सदस्य।
२. राज्य की विधान-सभा के सदस्यों के द्वारा निर्वाचित—१/३ सदस्य।
३. राज्य के ऐसे स्नातकों द्वारा निर्वाचित, जो कम-से-कम तीन वर्ष पहले स्नातक हो चुके हों—१/१२ सदस्य।
४. राज्य के माध्यमिक स्कूलों तथा कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों द्वारा निर्वाचित—१/१२ सदस्य।
५. राज्य के साहित्यिक, कलाकार, समाज-सेवी आदि व्यक्तियों के प्रतिनिधि-रूप में राज्यपाल द्वारा मनोनीत—१/६ सदस्य।

इन्हीं नियमों के अनुसार बिहार-राज्य की विधान-परिषद् का संगठन हुआ है। आजकल परिषद् के सदस्यों की संख्या ९६ है।

विधान-मण्डल के सदस्य होने की योग्यता

कोई भी व्यक्ति, जो भारत का नागरिक हो, विधान-मंडल की किसी भी सभा का सदस्य होने के लिए उम्मीदवार हो सकता है। परन्तु विधान-सभा की सदस्यता के लिए कम-से-कम

२१ वर्ष और परिषद् के लिए ३० वर्ष की आयु होनी आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति, जो भारत-सरकार या किसी राज्य-सरकार के अधीन किसी भी लाभप्रद पद को ग्रहण करता है, या जो खराब दिमाग का है, या जो दिवालिया है, या भारतीय
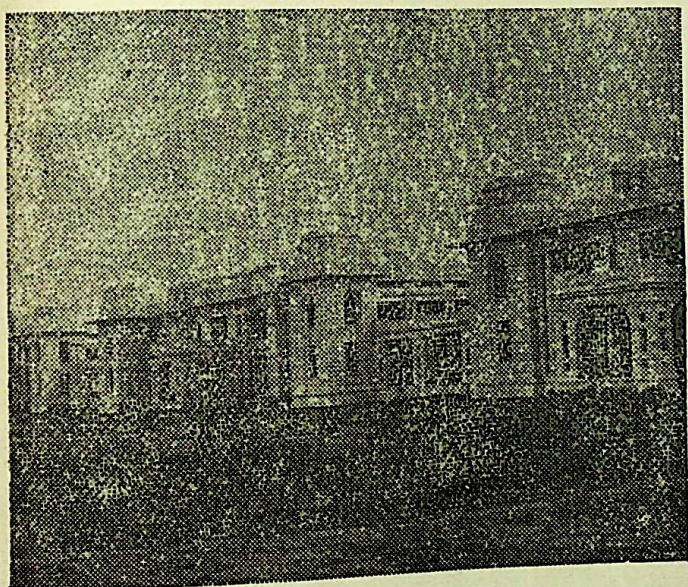
बिहार विधान-मण्डल-भवन

नागरिकता को छोड़कर किसी दूसरे देश का नागरिक बन गया है, या जो बड़े-बड़े अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है, विधान-सभा या विधान-परिषद् का सदस्य नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति एक ही समय दो विधान-मण्डलों का सदस्य नहीं बन सकता है।

विधान-मण्डल के पदाधिकारी

चुनाव के पश्चात् विधान-सभा के सदस्य, अपने बीच से, एक अध्यक्ष (स्पीकर) और एक उपाध्यक्ष (डिपुटी स्पीकर) चुनते हैं। इसी प्रकार विधान-परिषद् के सदस्य भी अपने में से, एक सभापति (प्रेसिडेण्ट) और एक उपसभापति (डिपुटी प्रेसिडेण्ट) चुनते हैं। ये पदाधिकारी त्यागपत्र देकर अपने पद से हट सकते हैं, या जिस सभा के वे सदस्य रहते हैं, उसी सभा के अधिकांश सदस्य उनपर अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उन्हें हटा सकते हैं। उन्हें निर्धारित वेतन और भत्ता मिलता है। हमारे बिहार-राज्य में डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु और श्रीसत्येन्द्रनारायण अग्रवाल क्रमशः विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष हैं।

अभ्यास

(१) बिहार-राज्य में विधान-मण्डल का संगठन कैसे हुआ है ?

(२) क्या विधान-सभा और विधान-परिषद् के सदस्यों के लिए समान योग्यताएँ होनी चाहिए ?

(३) विधान-मण्डल के पदाधिकारी कौन-कौन हैं ?

अध्याय ११

विधान-मण्डल के कार्य

कार्यपालिका पर नियन्त्रण

विधान-मण्डल के अनेक कार्य होते हैं। सर्वप्रथम राज्य का मन्त्रिमण्डल अपनी नीति एवं कार्यों के लिए सामूहिक रूप से, विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका मतलब यह है कि विधान-मंडल के किसी भी सदस्य को यह अधिकार है कि वह मन्त्रियों से यह प्रश्न पूछ सके, या सरकारी अधिकारियों के कामों की आलोचना कर सके। विधान-सभा के सदस्य, बहुमत द्वारा, मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर, उसे हटा सकते हैं।

आय-व्यय पर नियन्त्रण

इसके अलावा राज्य का वार्षिक आय-व्ययक (सालाना बजट) भी विधान-मंडल द्वारा ही स्वीकृत होता है, परन्तु इस सम्बन्ध में विधान-सभा के अधिकार विधान-परिषद् से अधिक हैं। धन-विधेयक (आर्थिक बिल) विधान-सभा से ही आरम्भ होते हैं और विधान-परिषद् द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर १४ दिनों के पश्चात् वे स्वीकृत समझे जाते हैं। वार्षिक आय-व्ययक के लिए बैठक प्रायः फरवरी-मार्च में ही होती है।

विधियों या कानूनों का निर्माण

राज्य के अधीन सभी विषयों पर कानून बनाने का काम विधान-मन्डल का ही है। हमारे संविधान में एक सूची दे दी गई है, जिसमें साफ-साफ बतलाया गया है कि राज्य का विधान-मण्डल किन-किन विषयों पर कानून बना सकता है।
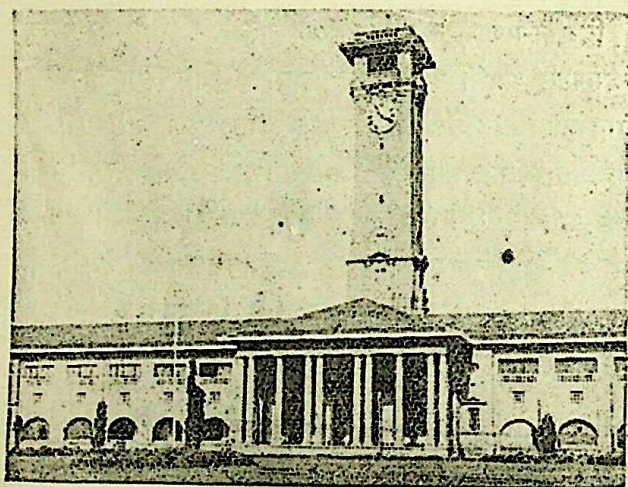
बिहार-सचिवालय

विधान-मण्डल में जो प्रस्ताव कानून बनाने के लिए उपस्थित किये जाते हैं, उन्हें विधेयक (बिल) कहते हैं। आर्थिक बिल, अर्थात् धन-विधेयक को छोड़कर सभी प्रकार के विधेयक विधान-सभा या विधान-परिषद् में उसके किसी भी सदस्य द्वारा, उपस्थित किये जा सकते हैं और जब दोनों

सभाएं उसे स्वीकृत कर देती हैं, तब राज्यपाल (गवर्नर) की स्वीकृति द्वारा वे कानून का रूप धारण करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, धन-विधेयक केवल विधान-सभा में ही उपस्थित किये जाते हैं।

यदि कोई विधेयक विधान-सभा द्वारा स्वीकृत हो जाय, परन्तु विधान-परिषद् उसे अस्वीकृत कर दे या विधान-परिषद् तीन महीनों तक उसपर विचार ही न करे, तो विधान-सभा उसपर पुनः विचार करती है। फिर वह विधेयक विधान-परिषद् में भेजा जाता है और इस बार भी यदि विधान-परिषद् उसे अस्वीकृत कर दे या एक माह तक उसपर विचार ही न करे, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जाता है और राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राज्यपाल या तो किसी विधेयक को स्वीकार कर सकता है या उसे पुनर्विचार के लिए विधान-मण्डल को लौटा सकता है, या कुछ प्रस्तावों को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित (रिजर्व) कर सकता है। परन्तु विधान-सभा द्वारा स्वीकृत धन-विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता।

साधारणतः विधेयक (बिल) दो तरह के होते हैं—एक सरकारी, दूसरा गैर-सरकारी। सरकारी विधेयक के स्वीकृत होने में विशेष अड़चन नहीं होती, कारण विधान-मण्डल में सरकारी पक्ष के सदस्यों की संख्या ही अधिक रहती है; परन्तु गैर-सरकारी विधेयकों पर काफी बहस होती है और उनका स्वीकृत होना भी कठिन हो जाता है।

स्मरण रहे कि जिस विधेयक में नया कर लगाने, हटाने या उसमें कमी करने की बात हो या जिसका सम्बन्ध राज्य के आय-व्यय से हो, वह धन-विधेयक समझा जाता है।

सरकार की नीति का निर्धारण

विधान-मण्डल राज्य-सरकार को जनता के कष्टों और उनकी समस्याओं से परिचित कराता है। यह सरकार की नीति को निर्धारित कर उसके सम्मुख एक ठोस कार्यक्रम उपस्थित करता है। इसके बाद ही सरकार उस दिशा में कदम उठाती है।

ऊपर की बातों से मालूम हो जाता है कि विधान-मण्डल के कार्य और अधिकार बहुत अधिक हैं। यह भी विदित होता है कि विधान-सभा, विधान-परिषद् से अधिक शक्तिशाली होती है।

अभ्यास

(१) विधान-मण्डल के मुख्य कार्य कौन-कौन हैं ?

(२) धन-विधेयक कैसे स्वीकृत होता है ?

(३) विधान-सभा के अधिकार विधान-परिषद् से किन-किन बातों में अधिक हैं ?

(४) कोई विधेयक कानून कैसे बनता है ?

अध्याय १२

विधान-मण्डल के सदस्यों का कर्त्तव्य

स्थानीय स्वायत्तशासन की संस्थाओं का वर्णन करते समय यह बतलाया गया है कि इनके सदस्य अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाताओं के प्रतिनिधि होते हैं और इसीलिए उनके प्रति इनके कई कर्त्तव्य होते हैं। ठीक उसी प्रकार विधान-मण्डल के सदस्य भी अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र की जनता के प्रतिनिधि होते हैं। ये राज्य-भर के शासन एवं लोक-हित के लिए भी जिम्मेवार होते हैं। इस तरह से यह देखा जाता है कि राज्य के लिए कानून बनानेवाली सभाओं के सदस्यों का कर्त्तव्य महान् है और उनकी जिम्मेवारी बहुत अधिक है।

प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य होता है कि वह एक योग्य नागरिक बने और सचाई तथा ईमानदारी के साथ शासन चलाने में सहायक बने। उसे सदा ही राष्ट्र-हित के लिए सोचना और कार्य करना चाहिए और व्यक्तिगत स्वार्थ या किसी जाति या वर्ग के स्वार्थ से अलग रहना चाहिए। आदर्श सदस्य वही है, जो राज्य की सभी समस्याओं को ठीक-ठीक समझता हो या समझने की कोशिश करता हो और लगातार अध्ययन करके अपने ज्ञान को बढ़ाता रहता हो। अपने निर्वाचन-क्षेत्र की जनता का सच्चा प्रतिनिधि बनने के लिए, प्रत्येक सदस्य के लिए यह जरूरी है कि बराबर अपने निर्वाचन-क्षेत्र के सम्पर्क में रहे।

वहाँ के लोगों की समस्याओं और कष्टों को समझे। विधान-मण्डल की बैठक में उनपर प्रकाश डाले और जनता की शिकायतों को दूर करने की चेष्टा करे। यह तभी सम्भव है, जब कि प्रत्येक सदस्य अपने निर्वाचन-क्षेत्र का समय-समय पर दौरा करता रहे और वहाँ की जनता के सुख-दुःख से परिचित रहे। उसे याद रखना चाहिए कि वह विधान-मण्डल में जनता का प्रतिनिधि है और उसकी वाणी उसके मतदाताओं की वाणी है।

साथ ही, प्रत्येक सदस्य को केवल अपने निर्वाचन-क्षेत्र के हित के लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राज्य के हित के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब कि सदस्य स्वार्थ-भावना का त्याग करे और अपने निर्वाचन-क्षेत्र, राज्य और राष्ट्र के हितों की उन्नति के लिए सचेष्ट रहे। प्रत्येक सदस्य के लिए यह भी उचित है कि वह अपने निर्वाचन-क्षेत्र की जनता में राष्ट्रीय भावना को विकसित करे और अपने आचरण को वहाँ की जनता के लिए एक आदर्श के रूप में उपस्थित करे। ऐसे सदस्यों से ही समाज और राष्ट्र का कल्याण सम्भव है।

अभ्यास

(१) विधान-मण्डल के सदस्यों का अपने प्रति क्या कर्त्तव्य है ?

(२) अपने निर्वाचन-क्षेत्र के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है ?

(३) विधान-मण्डल के सदस्यों के प्रमुख कर्त्तव्यों पर एक छोटा-सा लेख लिखिए।

अध्याय १३

राजनीतिक दल

राजनीतिक दल का अर्थ

राजनीतिक दल से व्यक्तियों के ऐसे संगठित समूह का बोध होता है, जो किसी एक प्रकार के राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों में विश्वास रखता है, निर्वाचन में भाग लेता है और उसमें सफल होने पर सरकार का निर्माण करके उन सिद्धान्तों के आधार पर देश-सेवा करने की चेष्टा करता है। परन्तु, व्यवहार में सभी दल राष्ट्र-हित का ध्यान नहीं रखते और जब उन्हें अधिकार मिल जाता है, तब वे स्वार्थ-सिद्धि में लग जाते हैं। संक्षेप में राजनीतिक दल से हमलोगों का मतलब नागरिकों के ऐसे समूह से है, जिसका राजनीतिक विषयों या स्थितियों के सम्बन्ध में एक विशेष मत हो और वह यह भी चाहता हो कि सभी नागरिक उस मत को मानें। राजनीतिक दलों के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्ष होते हैं, अर्थात् सैद्धान्तिक पक्ष से मतलब यह है कि उस दल के सभी सदस्य एक ही प्रकार की विचार-धारा में विश्वास करते हैं और व्यावहारिक पक्ष से यह कि वे उन सिद्धान्तों पर चलना चाहते हैं।

दलों के आधार

राजनीतिक दल कई कारणों से बनते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल देश की समस्याओं को अपने सिद्धान्तों के अनुसार हल करना चाहता है। अतएव, लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली में जहाँ विचारों और कार्यों की स्वतन्त्रता होती है, ऐसे दलों की संख्या भी बढ़ जाती है। इसके अलावा धर्म, जाति और संस्कृति के भेद-भाव के आधार पर भी दल बनते हैं; जैसे हमारे यहाँ रामराज्य-परिषद्, जनसंघ, हिन्दू-महासभा आदि दल धर्म के आधार पर ही बने हैं। कभी-कभी वर्ग-विशेष की भलाई के लिए भी दल बनते हैं; जैसे दलितवर्ग-संघ, त्रिवेणी-संघ आदि। कई राजनीतिक दल कुछ विशेष आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों के आधार पर भी बनते हैं; जैसे कांगरेस-दल, साम्य-वादी दल, संयुक्त समाजवादी दल आदि। प्रत्येक राजनीतिक दल किसी विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना चाहता है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक आधार पर बने हुए राजनीतिक दल बहुत दिनों तक चलते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल का अपना-अपना कार्यक्रम रहता है, और ऐसे दलों में सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों के सदस्य रहते हैं। प्रत्येक दल अपनी नीति और कार्यक्रम को जनता पर प्रकट करने के लिए अपना-अपना घोषणा-पत्र प्रचारित करता है और उसी के आधार पर चलने का प्रयत्न करता है।

राजनीतिक दलों के कार्य

निर्वाचन या चुनाव में भाग लेना राजनीतिक दलों का पहला कार्य होता है। प्रत्येक दल अपने-अपने उम्मीदवारों को चुनाव में खड़ा करता है और उन्हें सफल बनाने की चेष्टा करता है। राजनीतिक दलों का दूसरा काम जनता को अपने कार्य और नीति के विषय में पूरी जानकारी कराना है। इस प्रकार नागरिकों को देश की प्रमुख समस्याओं का काफी ज्ञान हो जाता है और उन्हें राजनीतिक शिक्षा भी मिल जाती है। राजनीतिक दल लोकमत के निर्माण में सहायक होते हैं और जनता में राष्ट्रीय भावना का विकास कराते हैं। इसके अलावा प्रत्येक राजनीतिक दल का उद्देश्य चुनाव में सफलता पाकर अपनी सरकार बनाना होता है। विरोधी दल सरकार की नीति और कामों की आलोचना तथा उसके दोषों को प्रकट करते हैं। राजनीतिक दल जनता और सरकार के बीच में मध्यस्थ का काम करते हैं और इसके फलस्वरूप जनता और सरकार का सम्पर्क बना रहता है। विरोधी दल की कड़ी आलोचनाओं के कारण सरकार का निरंकुश होना कठिन हो जाता है।

प्रत्येक राजनीतिक दल में कुछ उत्साही कार्यकर्त्ता रहते हैं, और उनका संगठन होता है। इन कार्यकर्त्ताओं में से एक दल का प्रधान या सभापति भी चुना जाता है। निर्वाचन के समय में ही किसी राजनीतिक दल की शक्ति और संगठन का

ठीक-ठीक पता चलता है। सन् १९६२ ई० के आम चुनाव के फलस्वरूप हमारे राज्य में कांगरेस-दल का पुनः बहुमत कायम हुआ। आजकल इस दल के नेता श्रीकृष्णवल्लभ सहाय हैं, जो बिहार के मुख्यमन्त्री हैं।

अभ्यास

(१) राजनीतिक दल का क्या अर्थ होता है ?
(२) राजनीतिक दल किन-किन आधारों पर बनते हैं ?
(३) लोकतांत्रिक शासन में राजनीतिक दलों का क्या महत्त्व होता है ?
(४) बिहार में कौन-कौन-से मुख्य दल हैं ? उनके कार्यक्रम पर एक छोटा-सा लेख लिखिए।

अध्याय १४

मन्त्रिमण्डल और संयुक्त उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

मन्त्रिमण्डल क्या है ?

लोकतांत्रिक शासन-पद्धति में मन्त्रिमण्डल (कैबिनेट) का एक विशेष स्थान रहता है। यह देश या राज्य के शासन की प्रबन्ध-समिति के समान होता है और समूचे शासन का भार इसी पर रहता है। राज्य का विधान-मण्डल कानून बनाता है और मन्त्रिमण्डल उन्हीं कानूनों के आधार पर शासन करता है।

यही नहीं, कानूनों के बनाने में भी मन्त्रिमण्डल का काफी हाथ रहता है।

मन्त्रिमण्डल की प्रथा का विकास

मन्त्रिमण्डल (कैबिनेट) की प्रथा का विकास, सर्वप्रथम इंगलैंड में ही धीरे-धीरे तथा क्रमिक रूप से प्रारम्भ हुआ। इस प्रथा की नींव, साधारणतः सलाहकारों की संस्था के रूप में पड़ी थी। आगे चलकर ट्यूडर और स्टुअर्ट-वंश के राजाओं के अधीन इसके अधिकार एवं प्रभाव काफी बढ़ गये। धीरे-धीरे

देश के शासन में इसका महत्त्व बढ़ता गया, इसके सदस्यों की संख्या और साथ ही इसकी शक्ति भी बढ़ती गयी। अठारहवीं शताब्दी में इंगलैंड के राजा जॉर्ज प्रथम और जॉर्ज द्वितीय के जमाने में मन्त्रिमण्डल का काफी विकास हुआ और इनका आधुनिक रूप बहुत अंशों में निश्चित हुआ। इसी जमाने में प्रधान मन्त्री का पद भी बना और सर रॉबर्ट वालपोल इंगलैंड का प्रथम प्रधान मन्त्री हुआ। इसके बाद जब बड़े और छोटे पिट क्रमशः प्रधान मन्त्री हुए, तब इस प्रथा की शक्ति और भी बढ़ गई। प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४-१८ ई०) के बाद से तो इंगलैंड के मन्त्रिमण्डल का महत्त्व वहाँ के दैनिक शासन में इतना बढ़ता गया है कि ऐसे शासन को 'मन्त्रिमण्डल द्वारा शासन' कहना ही उचित होगा। आजकल तो वहाँ का मन्त्रिमण्डल ही जो वहाँ की संसद् (पार्लियामेंट) के प्रति उत्तरदायी है, सर्वेसर्वा है।

भारत में इस प्रथा का विकास

भारत में भी इस प्रथा का विकास इंगलैंड की ही तरह धीरे धीरे हुआ है। इसकी नींव सन् १९१९ ई० के 'मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' कानून में पाई जाती है। परन्तु, सन् १९३५ ई० के भारतीय अधिनियम के अनुसार ही उत्तरदायी शासन-पद्धति को यहाँ मजबूत बनाया गया है। प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था की गयी। साधारण निर्वाचन में भारत के ११ प्रान्तों में से लगभग आठ प्रान्तों में कांगरेस-दल की जीत हुई और वहाँ काँगरेसी

मन्त्रिमण्डल बने। इसी बीच १९३९ ई० में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। भारत की विदेशी सरकार ने बिना कांगरेस से पूछे ही, इस युद्ध में भारत को भी घसीट लिया, जिसका विरोध कांगरेस ने जोरों से किया। फलस्वरूप, प्रान्तों के कांगरेसी मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद के लगभग सात-आठ वर्ष बड़े ही क्रांतिकारी रहे हैं। इसी बीच कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं; जैसे सन् १९४२ ई० की की अगस्त-क्रान्ति, इंगलैंड की सरकार द्वारा भेजा गया 'कैबिनेट-मिशन' का यहाँ आना, देश का विभाजन, हिन्दू-मुस्लिम-दंगे और अन्त में १५ अगस्त, १९४७ ई०, को भारत और पाकिस्तान नामक दो राज्यों की स्थापना। २६ जनवरी, १९५० ई० से भारत का नया लोक-तांत्रिक संविधान लागू हुआ और जनवरी-फरवरी, १९५२ ई० में सर्वप्रथम इस संविधान के अनुसार साधारण निर्वाचन हुआ। इसमें कांगरेस-दल सफल हुआ और विभिन्न राज्यों में कांगरेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए। अतः, स्वतन्त्रता-प्राप्ति और विशेषतः नये संविधान के लागू होने के बाद से भारतीय 'मन्त्रिमण्डल'-प्रथा का दिनानुदिन विकास होता आया है। अब तो उत्तरदायी गणतांत्रिक शासन की नींव हमारे देश में काफी मजबूत हो गई है। सन् १९५७ ई० के साधारण निर्वाचन के फलस्वरूप भी केवल केरल-राज्य को छोड़कर भारतीय संघ के सभी राज्यों, में कांगरेसी मन्त्रिमण्डल बने। केरल में साम्यवादी दल की सरकार बनी। यह भारत के लिए एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण घटना हुई। आगे चलकर साम्यवादी सरदार के असफल होने के

कारण केरल में पुनर्निर्वाचन हुआ और कांगरेस-दल ने वहाँ संयुक्त सरकार बनायी। सन् १९६२ ई० के तृतीय साधारण निर्वाचन के फलस्वरूप पुनः भारत में कांगरेस-दल की सरकार बनी है।

मन्त्रिमण्डल की रचना

अब यह प्रश्न उठता है कि मन्त्रिमण्डल की रचना कैसे होती है। साधारणतः लोक सभा या विधान-सभा में जिस राजनीतिक दल के सदस्यों का बहुमत होता है, उसी दल का नेता मुख्यमन्त्री (केन्द्र में इसे प्रधान मन्त्री कहते हैं) बनाया जाता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल उस नेता को अपना मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए कहते हैं। मन्त्रिमण्डल की रचना के समय प्रधान मन्त्री या मुख्य मन्त्री को बहुत-सी बातों को ध्यान में रखना पड़ता है; जैसे व्यक्ति की योग्यता, अपने दल में उसका प्रभाव आदि। सभी मन्त्रियों को प्रधान मन्त्री या मुख्यमन्त्री की नीति और अपने दल के सिद्धान्तों के साथ सहमत होना पड़ता है अन्यथा अपने पद से हटना पड़ता है। साधारणतः, प्रत्येक सप्ताह में एक बार मन्त्रिमण्डल की बैठक होती है या हर माह में कम-से-कम एक बार तो जरूर ही। प्रधान मन्त्री या मुख्यमन्त्री ऐसी सभी बैठकों के सभापति होते हैं, परन्तु उनकी अनुपस्थिति में दूसरा मन्त्री भी सभापति हो सकता है।

संयुक्त उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

प्रत्येक मन्त्री के अधीन शासन का कोई-न-कोई विभाग रहता है और अपने विभाग का शासन और निरीक्षण वह अन्य अधिकारी की सहायता से करता है। परन्तु प्रत्येक मन्त्री अपने कार्यों के साथ-ही-साथ समूचे मन्त्रिमण्डल के कार्यों और नीतियों के लिए भी संयुक्त या सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। यदि किसी एक मन्त्री पर किया गया अविश्वास का प्रस्ताव लोकसभा या विधान-सभा में स्वीकृत हो जाय, तो वह सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव समझा जाता है और मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र दे देना पड़ता है। कोई भी मन्त्रि-मण्डल तबतक सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है, जबतक उसके प्रत्येक सदस्य संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर अपना-अपना काम करें, जिससे कि समूचा मन्त्रिमण्डल एक इकाई में संगठित हो। साधारणतः मन्त्रिमण्डल तबतक कायम रहता है, जबतक विधान-मण्डल कायम रहता है, जिसके सभी मन्त्री सदस्य रहते हैं। हाँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव उनके विरुद्ध पास हो जाने पर उन्हें पद-त्याग करना पड़ता है। इस तरह के प्रस्ताव बहुत कम ही स्वीकृत होते हैं। याद रहे कि मन्त्रिमण्डल एक साथ बनता है और एक साथ ही टूटता भी है।

प्रधान मन्त्री या मुख्यमन्त्री

प्रधान मन्त्री या मुख्यमन्त्री का पद विशेष महत्त्व का होता है। वह मन्त्रिमण्डल का मुखिया होता है और उसकी

बैठकों का सभापति होता है। वह मन्त्रियों की नियुक्ति करता है और उनके कामों का निरीक्षण भी करता है। यदि दो मन्त्रियों के बीच कोई कठिनाई खड़ी होती है, तो उसे वह मुख्यमन्त्री सुलझाने की चेष्टा करता है, और यदि कोई मन्त्री उसकी नीति के अनुसार चलने से अस्वीकार करता है, तो उसे पद-त्याग करने के लिए वह बाध्य कर सकता है।

मन्त्रिमण्डल की सहायता के लिए कई उपमन्त्री (डिपुटी मिनिस्टर) तथा संसदीय सचिव (पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) रहते हैं, जो किसी-न-किसी विभाग के मन्त्री के अधीन रखे जाते हैं। साधारणतः बड़े-बड़े और अधिक महत्त्वपूर्ण विभागों में ही इनकी नियुक्ति होती है, जहाँ कार्य-भार अधिक रहता है। केन्द्र और कई राज्यों में कुछ राज्य-मन्त्री भी नियुक्त किये गये हैं।

हमें यह भी जान लेना चाहिए कि सभी समय एक ही दल के लोग मन्त्रिमण्डल में नहीं रहते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी राज्य की विधान-सभा में किसी एक दल का बहुमत नहीं होने पाता। ऐसी हालत में दो या अधिक दलों के लोग मिलकर संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाते हैं। प्रायः लड़ाई या संकटकाल में संयुक्त मन्त्रिमण्डल की जरूरत पड़ती है। साधारणतः, यह देखा गया है कि ऐसा मन्त्रिमण्डल ठीक तरह से काम नहीं कर सकता, कारण कि भिन्न-भिन्न दलों के सदस्य अपने-अपने कार्य-क्रम के अनुसार चलना चाहते है और

इससे संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को कार्य में लाना कठिन हो जाता है। संयुक्त मन्त्रिमण्डल ऐसे देशों में प्रायः सर्वदा बनते रहते हैं, जहाँ राजनीतिक दलों की संख्या बहुत अधिक रहती है; जैसे फ्रांस।

अभ्यास

(१) 'मन्त्रिमण्डल' से आप क्या समझते हैं ?

(२) मन्त्रिमण्डल की प्रथा का विकास कैसे हुआ ?

(३) मन्त्रिमण्डल की रचना कैसे होती है ? संयुक्त मन्त्रिमण्डल कब और कैसे बनता है ?

(४) मन्त्रिमण्डल का विधान-सभा से क्या सम्बन्ध रहता है ?

(५) प्रधान मन्त्री या मुख्यमन्त्री के पद का क्या विशेष महत्त्व है ?

(६) संयुक्त उत्तरदायित्व या उत्तरदायित्व से आप क्या समझते हैं ?

अध्याय १५

राज्यों का शासन, राज्यपाल, मन्त्रिमण्डल इत्यादि

भारतीय संघ के राज्य

आजकल भारत-संघ में १६ राज्य तथा कुछ केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र हैं। इन राज्यों के नाम हैं—बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, असम, उत्तप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, केरल, मैसूर, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, पंजाब, जम्मू और कश्मीर, एवं नागालैंड। केन्द्र प्रशासित क्षेत्र हैं—दिल्ली, हिमाचल-प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अण्डमन और नीकोबार द्वीप-समूह, लक्षाडीव, मीनीकोय और अमीनडीव द्वीप-समूह तथा गोआ, डामन, डिऊ इत्यादि।

राज्यपाल (गवर्नर)

राज्य की समस्त शासन-सम्बन्धी शक्तियाँ राज्यपाल के अधीन रहती हैं और वह उनका प्रयोग या तो स्वयं या अपने अधीन के कर्मचारियों द्वारा कर सकता है। राज्यपाल राज्य के शासन का प्रधान होता है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की राय से, पांच वर्षों के लिए, होती है

और इस अवधि के बाद भी वह इस पद पर तबतक रहता है, जबतक कि उसका उत्तराधिकारी नियुक्त न हो जाय। राज्यपाल त्याग-पत्र देकर अपने पद से हट सकता है या राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल के पद पर वे ही व्यक्ति नियुक्त होते हैं, जो अपनी योग्यता, अनुभव, समाज-सेवा

बिहार के राज्यपाल श्री अनन्त शयनम् आयंगार

आदि के लिए सम्मान पाये हुए रहते हैं। लेकिन, कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक न हो तथा जिसकी आयु ३५ वर्ष की नहीं हुई हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। राज्यपाल को साढ़े पांच हजार रुपया मासिक

वेतन मिलता है और संसद् (पार्लियामेंट) द्वारा उसके वेतन, भत्ता आदि निर्धारित किये जाते हैं।

राज्यपाल के अधिकार अनेक हैं। राज्य के सभी कार्य उनके नाम पर किये जाते हैं। वह राज्य के मुख्यमन्त्री को नियुक्त करता है और उनके परामर्श से, अन्य मन्त्रियों को। राज्य के सभी बड़े-बड़े पदों पर नियुक्ति भी राज्यपाल के द्वारा ही होती है। राष्ट्रपति द्वारा संकट-काल की घोषणा होने पर राज्यपाल, राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा राज्य के कार्यों को स्वयं चलाता है। राज्य के विधान-मण्डल की बैठक राज्यपाल ही बुलाता है और उसे विधान-सभा को विघटित करने का भी अधिकार है। राज्यपाल की स्वीकृति के बाद ही विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत किया गया कोई भी विधेयक कानून बन सकता है। जिस समय विधान-मण्डल की बैठक नहीं चलती है, उस समय आवश्यकता पड़ने पर वह अध्यादेश (आर्डिनेंस) निकाल सकता है। विधान-परिषद् के कुछ सदस्यों को मनोनीत करने का भी उसे अधिकार है। राज्य के उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति राज्यपाल से परामर्श लेते हैं। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी राज्यपाल को अधिकार मिले हैं। प्रतिवर्ष राज्य का आय-व्ययक (बजट) विधान-सभा में राज्यपाल ही प्रस्तुत कराते हैं। अतः, देखने से तो यह मालूम होता है कि राज्य के शासन के लिए सभी वास्तविक शक्तियाँ राज्यपाल के ही हाथों में हैं। परन्तु, यथार्थ में शासन का सारा उत्तरदायित्व

मुख्य मन्त्री

श्री कृष्णवल्लभ सहाय

सामान्य प्रशासन

मुख्य मन्त्री

मुख्य सचिव

मण्डलीय आयुक्त

जिला दण्डाधिकारी तथा समाहर्ता

उपमण्डलीय दण्डाधिकारी

(एस० डी० ओ०)

परिमंडल-विकास-पदाधिकारी

(राजस्व तथा विकास)

आरक्षी-

राज्य की आरक्ष

आरक्षी महा

आरक्षी उप-महा

जिलों में आरक्षी

सहायक तथा उ

(उपमंडल

(कहीं-कहीं थानों में भी

थानों में आरक्ष

दफादार,

ाग

था

फ

धिक

क्षक

क

ा गया है)

तक
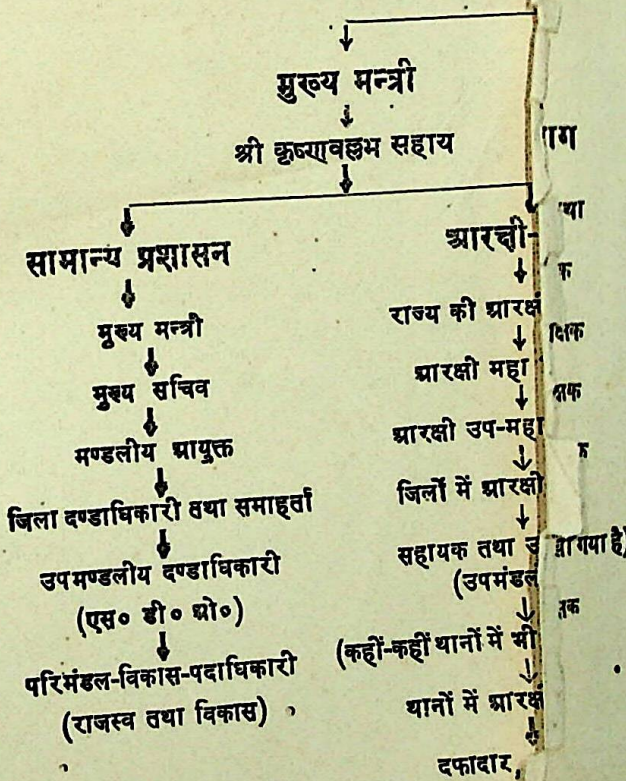
बिहार सरकार
राज्य-पाल
श्री अनन्त शयनम् आयंगार
मन्त्रीगण एवं सचिवालय
मुख्य मन्त्री
श्री कृष्णावल्लभ सहाय
सामान्य प्रशासन
मुख्य मन्त्री
मुख्य सचिव
मण्डलीय आयुक्त
जिला दण्डाधिकारी तथा समाहर्ता
उपमण्डलीय दण्डाधिकारी
(एस० डी० ओ०)
परिमंडल-विकास-पदाधिकारी
(राजस्व तथा विकास)
आरक्षी-विभाग
राज्य की आरक्षी
आरक्षी महा
आरक्षी उप-महा
जिलों में आरक्षी-
सहायक तथा उप
(उपमंडलों
(कहीं-कहीं थानों में भी रखा गया है)
थानों में आरक्षी
दफादार, चौ
शिक्षा-विभाग
श्री सत्येन्द्रनारायण सिंह
शिक्षा-मन्त्री
शिक्षा-सचिव
उप-सचिव तथा अवर-सचिव
शिक्षा-निदेशक, बिहार
उप-शिक्षा निदेशक
स्कूलों के क्षेत्रीय उप-निदेशक (४)
प्रत्येक जिले में एक-एक
जिला-शिक्षा पदाधिकारी
उपमण्डलीय शिक्षा-पदाधिकारी
उपमण्डलीय उप-शिक्षा-निरीक्षक
परिमण्डलीय उप-शिक्षा-निरीक्षक
श्री महेशप्रसाद सिं
नदी घाटी योजना,
सिंचाई एवं बिजली
के भार-साधक
वीरचन्द पटेल
भू-राजस्व के
भार-साधक
श्री अब्दुल कयूम अन्सारी
जन-स्वास्थ्य के
भार-साधक
श्री हरिनाथ मिश्र
सहकारिता के
भार-साधक
श्री रामलखन सिंह यादव
लोक-निर्माण एवं लोक-
स्वास्थ्य अभियन्त्रण
के भार-साधक
श्री जाफर इमाम
विधि एवं उत्पाद
के भार-साधक
राज्यमन्त्री
श्री अम्बिकाशरण सिंह
वित्त, कर, सांख्यिकी, लेखा
एवं राष्ट्रीय बचत
श्री मरलाल बैठा
गृह-
(जन
रहित)
श्री गिरीश तिवारी
शिक्षा
श्री नवलकिशोर सिंह
सामान्य प्रशा
और कारा
श्री सहदेव महतो
नदी घाटी योजना, सिंचाई,
बिजली, विधि और उत्पाद
श्री बरियार हेमब्रम
जन जातियों का कल्याण
श्री राघवेन्द्रनारायण सिंह
परिवहन
विकास आयुक्त का कार्यालय
संयुक्त विकास आयुक्त
मण्डलीय आयुक्त (कमिश्नर ४)
मण्डलाधीश (जिला-मजिस्ट्रेट १७)
उप-मण्डलाधीश (सबडिविजनल अफसर ३७)
परिमंडलाधिकारी
ग्राम-पन्चायत

बिहार सरकार
राज्य-पाल
श्री अनन्त शयनम् आयंगार
मन्त्रीगण एवं सचिवालय
शिक्षा-विभाग
श्री सत्येन्द्रनारायण सिंह
शिक्षा-मन्त्री
शिक्षा-सचिव
उप-सचिव तथा अवर-सचिव
शिक्षा-निदेशक, बिहार
उप-शिक्षा निदेशक
स्कूलों के क्षेत्रीय उप-निदेशक (४)
प्रत्येक जिले में एक-एक
जिला-शिक्षा पदाधिकारी
उपमण्डलीय शिक्षा-पदाधिकारी
उपमण्डलीय उप-शिक्षा-निरीक्षक
परिमण्डलीय उप-शिक्षा-निरीक्षक
श्री महेशप्रसाद सिंह
नदी घाटी योजना, सिंचाई एवं बिजली के भार-साधक
श्री वीरचन्द पटेल
भू-राजस्व के भार-साधक
श्री अब्दुल कयूम अन्सारी
जन-स्वास्थ्य के भार-साधक
श्री हरिनाथ मिश्र
सहकारिता के भार-साधक
श्री रामलखन सिंह यादव
लोक-निर्माण एवं लोक-स्वास्थ्य अभियन्त्रण के भार-साधक
श्री जाफर इमाम
विधि एवं उत्पाद के भार-साधक
श्री मुंगेरीलाल
खाद्य आपूर्ति, वाणिज्य एवं पशुपालन विभागों के भार-साधक
श्री सुशील कुमार बागे
सामुदायिक विकास एवं ग्राम-पंचायत के भार-साधक
श्रीमती सुमित्रा देवी
सूचना के भार-साधक
राज्यमन्त्री
...रलाल बैठा
...,कल्याण ...रहित)
श्री गिरीश तिवारी
शिक्षा
श्री नवलकिशोर सिंह
सामान्य प्रशासन और कारा
श्री सहदेव महतो
नदी घाटी योजना, सिंचाई, बिजली, विधि और उत्पाद
श्री बरियार हेमब्रम
जन जातियों का कल्याण
श्री राघवेन्द्रनारायण सिंह
परिवहन
श्री शिवशंकर सिंह
धार्मिक न्यास
श्री बालेश्वर राम
पर्यटन
विकास आयुक्त का कार्यालय
संयुक्त विकास आयुक्त
मण्डलीय आयुक्त (कमिश्नर ४)
मण्डलाधीश (जिला-मजिस्ट्रेट १७)
उप-मण्डलाधीश (सबडिविजनल अफसर ६७)
परिमंडलाधिकारी
ग्राम-पञ्चायत
बिहार विधान सभा
डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु—अध्यक्ष
श्री सत्येन्द्रनारायण अग्रवाल—उपाध्यक्ष
श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह, आई० सी० एस०,
मुख्य सचिव, बिहार सरकार

मन्त्रिमण्डल के ऊपर रहता है, और मन्त्रिमण्डल विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। हमारे राज्य के वर्त्तमान राज्यपाल श्रीअनन्तशयनम् आयंगार हैं।

मन्त्रिमण्डल

इसके पहलेवाले अध्याय में मन्त्रिमण्डल की रचना और उसके कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। यह तो मालूम ही हो चुका है कि राज्य-शासन में सहायता पाने के लिए राज्यपाल मन्त्रियों की नियुक्ति करते हैं। मन्त्री, विधान-मण्डल के सदस्यों में से ही चुने जाते हैं और यदि कोई ऐसा व्यक्ति मन्त्री बनाया गया हो, जो विधान-मण्डल का सदस्य नहीं है, तो उसे छह माह के भीतर ही विधान-मण्डल का सदस्य हो जाना पड़ेगा, अन्यथा मन्त्री-पद से हटना होगा।

हमारे राज्य में द्वितीय साधारण निर्वाचन में कांगरेस-दल का मन्त्रिमण्डल था। बिहार में कुल ९ मन्त्री और १४ उपमन्त्री थे। सन् १९६२ ई० के तृतीय महानिर्वाचन में भी कांगरेस-दल का बहुमत हुआ, जिसके फलस्वरूप कांगरेस-दल का मन्त्रिमण्डल बना। आजकल श्रीकृष्णवल्लभ सहाय राज्य-सरकार के मुख्यमन्त्री हैं।

नये मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों के नाम उनको सौंपे गये विभागों-सहित आगे दिये जाते हैं।

मंत्रीगण—

१—श्रीकृष्णवल्लभ सहाय—मुख्यमन्त्री, राजनीति एवं नियुक्ति, उद्योग, वित्त, श्रम, योजना एवं वन।

२—श्रीसत्येन्द्रनारायण सिंह—शिक्षा, कृषि एवं स्वायत्त-शासन।

३—श्रीमहेशप्रसाद सिंह—नदी-घाटी-योजना, सिंचाई एवं बिजली।

४—श्रीवीरचन्द पटेल—भू-राजस्व।

५—श्रीअब्दुल कयूम अंसारी—जन-स्वास्थ्य।

६—श्रीहरिनाथ मिश्र—सहकारिता।

७—श्रीरामलखन सिंह यादव—लोकनिर्माण एवं लोक स्वास्थ्य-अभियंत्रण।

८—श्रीजाफर इमाम—विधि एवं उत्पाद।

९—श्रीमुंगेरी लाल—खाद्य, आपूर्त्ति, वाणिज्य एवं पशु-पालन।

१०—श्रीसुशीलकुमार बागे—सामुदायिक विकास एवं ग्राम-पंचायत।

११—श्रीमती सुमित्रा देवी—सूचना।

राज्य-मंत्रीगण—

१—श्रीअम्बिकाशरण सिंह—वित्त, कर, सांख्यिकी, लेखा एवं राष्ट्रीय बचत।

२—श्रीडुमरलाल बैठा—गृह-निर्माण, कल्याण (जन-जातिरहित)।

३—श्रीगिरीश तिवारी—शिक्षा ।

४—श्रीनवलकिशोर सिंह—सामान्य प्रशासन और कारा ।

५—श्रीसहदेव महतो—नदी-घाटी-योजना, सिंचाई, बिजली, विधि और उत्पाद ।

६—श्रीबरियार हेम्ब्रम—जन-जातियों का कल्याण ।

७—श्रीराघवेन्द्रनारायण सिंह—परिवहन ।

८—श्रीशिवशंकर सिंह—धार्मिक न्यास ।

९—श्रीबालेश्वर राम—पर्यटन ।

प्रत्येक विभाग का शासन-प्रधान तो मन्त्री ही होता है, परन्तु व्यवहार में यही देखा जाता है कि शासन के सभी काम उस विभाग के स्थायी अधिकारी और कर्मचारी ही करते हैं। प्रत्येक विभाग का अलग-अलग एक सचिव (सेक्रेटरी) होता है, जो उस विभाग के मन्त्री के अधीन कार्य करता है। सचिव के अलावा उपसचिव (डिपुटी-सेक्रेटरी), अवर सचिव (अण्डर-सेक्रेटरी) आदि भी प्राय: प्रत्येक विभाग में होते हैं। इनके कार्यालय को सचिवालय (सेक्रेटरियट) कहते हैं, जो राज्य की राजधानी पटना में एक विशाल भव्य-भवन में है।

हमारा राज्य, शासन-सुविधा के लिए चार मण्डलों में बंटा हुआ है—पटना, भागलपुर, तिरहुत और छोटानागपुर-

मण्डल। प्रत्येक मण्डल का प्रधान आयुक्त या कमिश्नर कहलाता है। प्रत्येक मण्डल कई जिलों में विभक्त है। बिहार में सब मिलाकर सत्रह जिले हैं। जिले के शासन का प्रधान एक उच्च अधिकारी होता है, जिसे जिला-दण्डाधिकारी या समाहर्त्ता (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एवं कलक्टर) कहते हैं। किसी-किसी जिले में वह उप-आयुक्त (डिपुटी कमिश्नर) कहा जाता है। दण्डाधिकारी के रूप में वह जिले के प्रशासन का अध्यक्ष होता है। समाहर्त्ता के रूप में वह जिले के राजस्व की वसूली के लिए जिम्मेवार होता है। जिला-न्यायाधीश को छोड़कर प्रायः सभी जिला-स्थित विभागों के अधिकारियों के ऊपर जिला-दण्डनायक रहता है। उसकी सहायता के लिए कई उप-दण्डनायक और अवर दण्डनायक (सब-डिपुटी मजिस्ट्रेट) रहते हैं। इनके अतिरिक्त आरक्षी-अधीक्षक (पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट) जिला-न्यायाधीश, कार्यपालक अभियन्ता, सिविल सर्जन, कारा-अधीक्षक, जिला-विद्यालय-निरीक्षक जिला-शिक्षा-अधीक्षक, जिला-प्रचार-आयोजक आदि अधिकारी अपने-अपने विभागों के प्रधान होते हैं।

प्रत्येक जिला कई उप-मण्डलों में बंटा हुआ रहता है। हर उप-मण्डल का शासन एक उप-दण्डनायक के अधीन रहता है, जिसे उप-मण्डलाधिकारी (एस० डी० ओ०) कहते हैं। बिहार में सब मिलाकर ५७ उप-मण्डल हैं। प्रत्येक उप-मण्डल में कई थाने होते हैं, और हर एक थाने में एक आरक्षी-निरीक्षक (दारोगा) और कई जमादार तथा आरक्षी रहते हैं।

बिहार-सरकार का ध्यान ग्राम-सुधार की ओर विशेष रूप से गया है, प्रत्येक उप-मण्डल कई परिमण्डलों (सर्किलों) में बाँटा जा रहा है, और प्रत्येक परिमण्डल में कई गाँव रहेंगे। हरेक परिमण्डल को एक उपदण्डाधिकारी (डिपुटी मजिस्ट्रेट) के अधीन रखा जा रहा है, जिसे परिमण्डलाधिकारी कहते हैं। परिमण्डलाधिकारी अपने परिमण्डल के सभी विभागों का प्रधान रहेगा और उस क्षेत्र के विकास और उन्नति का उत्तरदायी रहेगा। बिहार के कई जिलों में यह योजना कार्यान्वित हो चुकी है और अनेक परिमण्डलाधिकारी नियुक्त किये जा रहे हैं।

अभ्यास

(१) राज्यपाल के कौन-कौन-से मुख्य अधिकार हैं ?

(२) बिहार के कौन-कौन-से मन्त्री हैं और उनके विभाग क्या हैं ?

(३) जिला और उप-मण्डल का शासन कैसे चलता है ?

(४) परिमण्डलाधिकारी से क्या समझते हैं ?

अध्याय १६

राज्य की न्याय-व्यवस्था

उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट)

राज्य-सरकार का एक प्रधान कार्य न्याय करना और कानून भंग करनेवालों को दण्ड देना है। न्याय-शासन के लिए
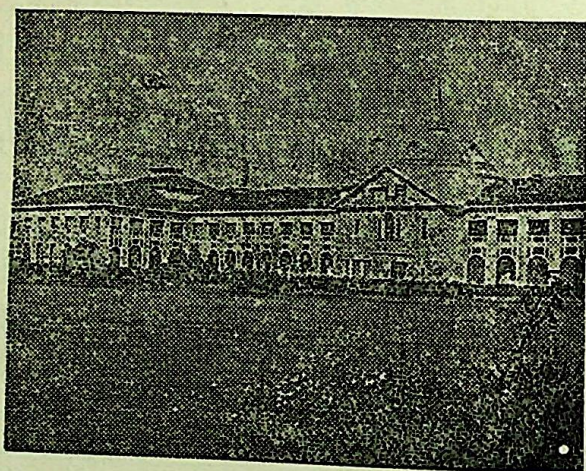
पटना उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट)

हमारे राज्य में एक उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) पटना में है। इसमें मुख्य न्यायाधीश (चीफ़-जस्टिस) और दस या ग्यारह

न्यायाधीश रहते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं। प्रत्येक न्यायाधीश ६२ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहते हैं और वे राष्ट्रपति के पास त्यागपत्र भेजकर अपने पद से हट सकते हैं। मुख्य न्यायाधीश को चार हजार और अन्य न्यायाधीशों को साढ़े तीन हजार रुपये मासिक वेतन मिलता है। न्यायाधीश के पद से निवृत्त हुए व्यक्ति को पुनः वकालत करने की स्वतन्त्रता नहीं है।

उच्च न्यायालय को मौलिक अधिकार के अलावा, नीचे के न्यायाधीशों से फौजदारी और दीवानी वादों (मुकदमों) की अपीलें सुनने का अधिकार भी है। इसके अतिरिक्त हाईकोर्ट राज्य के अन्दर की दीवानी और फौजदारी न्यायालयों का नियन्त्रण और निरीक्षण भी करता है। इसलिए यह प्रत्येक अधीन न्यायालय से प्रतिवेदन या विवरण मांग सकता है और इसके कार्य-संचालन के लिए नियम भी बनाता है। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध केवल नयी दिल्ली के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में ही अपील की जा सकती है। राज्य के छोटे-छोटे न्यायालयों के न्यायाधीशों की बदली तथा छुट्टी आदि की व्यवस्था उच्च न्यायालय ही करता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि राज्य-भर का सबसे बड़ा न्यायालय हाईकोर्ट ही है।

अधीन न्यायालय

उच्च न्यायालय के अधीन प्रत्येक राज्य में कई अन्य न्यायालय होते हैं, जिनमें जिला-न्यायालय मुख्य है। प्रत्येक जिला

तथा उप-मण्डल में न्यायालय खुले हुए हैं। जिला न्यायालय दो प्रकार के होते हैं—दीवानी और फौजदारी। जमीन-जायदाद और धन-सम्बन्धी मामलों को दीवानी कहते हैं और मार-पीट, खून-खराबी, गाली-गलौज, चोरी-डकैती आदि से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों को फौजदारी कहते हैं। फौजदारी वादों (मुकदमों) का निर्णय फौजदारी न्यायालय में होता है।

प्रत्येक जिले में एक जिला-न्यायाधीश (जिला-जज) होता है। उसके न्यायालय में नीचे के न्यायालयों से अपीलें भी आती हैं। जिला-जज खून, डकैती आदि से सम्बन्ध रखनेवाले बड़े-बड़े वादों (मुकदमों) का भी निर्णय करता है। अतः, वह दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों का निर्णय करता है। जिला-न्यायाधीश की नियुक्ति राज्यपाल, उच्च न्यायालय की राय से करते हैं।

जिला-न्यायाधीश के नीचे उप-न्यायाधीश होते हैं। किसी-किसी उपमण्डल में भी न्यायाधीश का न्यायालय रहता है। उप-न्यायाधीश के नीचे मुन्सिफ होते हैं। इनमें से कई उप-मण्डलों में रहते हैं। उप-न्यायाधीश और मुन्सिफ की नियुक्ति राज्य के लोकसेवा-आयोग (पब्लिक-सर्विस-कमीशन) और उच्च न्यायालय की राय से राज्यपाल करते हैं; परन्तु उनकी बदली, पदोन्नति, छुट्टी आदि उच्च न्यायालय के हाथों में ही रहती है।

फौजदारी वादों (मुकदमों) के निर्णय के लिए भी जिला और उपमण्डल में कई, छोटे-बड़े न्यायालय रहते हैं।

जिलाधीश के न्यायालय में फौजदारी के मुकदमे या नीचे के न्यायालयों की अपीलें आती हैं। ऐसे वादों (मुकदमों) के निर्णय के लिए प्रत्येक जिले में एक सत्र-न्यायाधीश का न्यायालय रहता है। उप-मण्डल में फ़ौजदारी के वादों (मुकदमों) के निर्णय वहाँ के उप-मण्डलाधिकारी (एस्०-डी० ओ०) के न्यायालय या उप-दण्डनायक तथा अवैतनिक (ऑनरेरी) दण्डनायक के न्यायालयों में होता है। दण्डनायक तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी और तृतीय श्रेणी। इन तीनों श्रेणियों के दण्डनायकों की शक्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। फौजदारी के सबसे छोटे न्यायालय अवैतनिक दण्डनायक और अवर उप-दण्डनायक के न्यायालय हैं, जिन्हें साधारणतः तृतीय श्रेणी के दण्डनायक की शक्तियाँ रहती हैं और अब तो इस तरह के अधिकांश वादों (मुकदमों) को ग्राम-पंचायतें ही निबटा रही हैं। बड़े-बड़े नगरों, जैसे पटना, जमशेदपुर, मुंगेर आदि में, एक-एक नगर-दण्डनायक (सिटी-मजिस्ट्रेट) भी रहते हैं, जिनकी शक्ति उस नगर तक ही सीमित रहती है।

नीचे के फौजदारी न्यायालयों से अपीलें दण्डनायक और सत्र-न्यायाधीश (सेशन जज) के न्यायालयों में जाती हैं। परन्तु, राज्य में फौजदारी या दीवानी के मुकदमों की अन्तिम अपील तो उच्च न्यायालय में ही होती है।

अब तो हमारे राज्य में फौजदारी न्यायालयों को भी न्याय-विभाग के अधीन ही रखा जा रहा है। हमारी राज्य-

सरकार इस सिद्धान्त को मानने लगी है कि न्याय-विभाग को शासन-विभाग या कार्यपालिका से अलग तथा स्वतन्त्र रखा जाय, कारण कि हमारे संविधान में इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सिद्धान्त आवश्यक है, और उसके विना निष्पक्ष रूप से न्याय सम्भव नहीं। अतः, बिहार में कई मुंसिफ, दण्डनायक नियुक्त किये गये हैं, जिनके न्यायालय को फौजदारी मुकदमों के निर्णय का भार भी सौंपा गया है। परन्तु यह नीति सभी जिलों में अभी तक नहीं बरती गयी है।

अभ्यास

(१) अपने राज्य की न्याय-शासन-प्रणाली पर एक छोटा लेख लिखिए।

(२) दीवानी और फौजदारी न्यायालयों से आप क्या समझते हैं ?

(३) उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) के संगठन और अधिकारियों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(४) आपके जिले में न्याय-शासन कैसे होता है ?

अध्याय १७

संघ और राज्य की सरकारों का सम्बन्ध

पहले ही कहा जा चुका है कि भारत कई राज्यों का एक संघ है। इसलिए हमारे संविधान में संघ की सरकार और राज्य की सरकारों के कार्यों और अधिकारों का यथासम्भव, साफ-साफ बंटवारा किया गया है। फिर भी, संघ की सरकार और राज्य की सरकारों में काफी घना सम्बन्ध है। शासन-सम्बन्धी कुछ ऐसे विषय हैं, जिनका सम्बन्ध समूचे देश से है और इसलिए उनका शासन समान रूप से होना आवश्यक है। ऐसे विषय संघ-सरकार के अधीन रखे गये हैं, जैसे डाक-तार, टेलिफोन, रेडियो की व्यवस्था, रेलगाड़ियों का प्रबन्ध, रक्षा-विभाग, वैदेशिक नीति, वाणिज्य-व्यवस्था, मुद्रा, सिनेमा इत्यादि। इन विभागों का सम्बन्ध सम्पूर्ण देश से है, और एक समान नीति के लिए इनका शासन केन्द्र के अधीन रहना आवश्यक है। हमारे संविधान में यह साफ-साफ बतला दिया गया है कि किन-किन विषयों का शासन संघ-सरकार के अधीन रहेगा और किन-किन का राज्यों के अधीन। संविधान में संघ-शासन के अधीन ९७ विषय सम्मिलित किये गये हैं। इनमें प्रायः सभी राष्ट्रीय महत्त्व के विषय हैं।

इसी प्रकार कुल ६६ ऐसे विषय हैं, जिनके शासन का अधिकार राज्य-सरकारों को दे दिया गया है। इनके सम्बन्ध में राज्यों के विधान-मण्डल कानून बनाते हैं। इन विषयों में मुख्य ये हैं—पुलिस (रेलवे भी), जेल, शिक्षा, सड़क, खेती, सिंचाई, बिजली, ग्राम-पंचायत और स्थानीय स्वायत्तशासन, न्याय-शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई, जंगल, राज्य-लोकसेवाएँ आदि।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे विषय भी हैं, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार संघ और राज्य दोनों सरकारों को है। यदि एक ही विषय पर दोनों सरकारें कानून बनायें और वे परस्पर-विरोधी हों, तो संघ-सरकार द्वारा बनाया गया कानून ही माना जायगा। ऐसे सब मिलाकर ४६ विषय हैं, जिनमें प्रधान हैं—न्याय, विवाह और विवाह-विच्छेद, मजदूर-सभाएं, सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण, बिजली, कारखाने, समाचार-पत्र, पुस्तक, मुद्रणालय इत्यादि।

हमारे संविधान में संघ और राज्यों की सरकारों के बीच आर्थिक बँटवारे का भी वर्णन है। कुछ चीजों की आमदनी सीधे संघीय सरकार को चली जाती है, जैसे आय-कर, विदेशों में जानेवाली वस्तुओं पर कर, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू पर लगाये गये कर, रेल-तार-डाक-विभाग की आय आदि। इसी तरह कुछ चीजों की आय राज्यों को मिलती है, जैसे दवाइयों, नशीली वस्तुओं और खेती की आय, न्यायालय में

टिकट-बिक्री कर, मनोरंजन कर, खनिज पदार्थों तथा पशुओं के ऊपर लगाये गये कर आदि। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी विषय हैं, जिनकी आय संघ और राज्य के बीच बंट जाया करती है। इतना ही नहीं, जिन राज्यों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है, उन्हें संघ की सरकार सहायता भी देती रहती है, तृतीय पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिए कई राज्यों की सरकारों को संघ से ऐसी सहायता दी जा रही है।

राज्य-सरकार की न्यायपालिका पर भी संघ की न्यायपालिका का नियंत्रण रहता है। राज्यों के उच्च न्यायालय से दीवानी तथा फौजदारी वादों (मुकदमों) की अपीलें सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में जाती हैं। यदि संघ और राज्य या एक राज्य की सरकार से दूसरे राज्य की सरकार का किसी विषय पर विवाद हो जाता है, तो संघीय सरकार का सर्वोच्च न्यायालय ही उसका निर्णय करता है। राज्यों के राज्यपालों, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों (जजों) की नियुक्ति भी संघ के राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

युद्धकाल में या किसी भी प्रकार की अशान्ति के समय या अशान्ति की आशंका होने पर राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राज्यपाल के नाम से अध्यादेश निकाले कि राज्य का शासन किस तरीके से चलाया जाय और राज्यपाल को उसका अध्यादेश मानना पड़ेगा। युद्ध या अशान्ति के समय में तो राष्ट्रपति की शक्ति काफी बढ़ जाती है और वह राज्य-शासन को अपने हाथों में ले सकता है और राज्यपाल या अपने अन्य अधिकारियों की

सहायता से उसे चला सकता है। अक्टूबर, १९६२ ई० से चीनी आक्रमण के फलस्वरूप एक ऐसी ही संकटकालीन स्थिति देश में आ गयी है, फलतः केन्द्रीय शासन की शक्ति बढ़ गयी है।

इन सब बातों के अध्ययन से साफ मालूम हो जाता है कि भारतीय संघ की शक्ति काफी अधिक है। हमारी संघीय सरकार कमजोर नहीं है। सच तो यह है कि केन्द्रीय शासन को शक्तिशाली होना ही चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो, तो विभिन्न राज्य आपस में झगड़कर राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने लगेंगे। राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए केन्द्रीय शासन का शक्तिशाली होना जरूरी है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि राज्यों की अपनी स्वतन्त्रता बिलकुल समाप्त कर दी जाय। अपने सीमित क्षेत्रों में राज्य-सरकारों को काफी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और यह मिली हुई है।

स्व. पू. रा. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

स्मरण रहे कि हमारे राज्य के अनेक प्रतिनिधि संघीय संसद् (पार्लियामेंट) तथा संघीय कार्यपालिका में है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, हमारे राज्य के छपरा जिले के जीरादेई नामक गाँव के निवासी थे। मई, १९६२ ई० से डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने राष्ट्रपति के पद से अवकाश ग्रहण किया

ओर उनके स्थान पर डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् हमारे नये राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं। इसके पूर्व ये भारत के उपराष्ट्रपति के पद पर थे। ये विश्व के एक विख्यात दार्शनिक एवं विचारक हैं।

अभ्यास

(१) संघ और राज्यों के बीच कामों का बँटवारा कैसे हुआ ?
(२) संघ और राज्यों के बीच आय का विभाजन किन सिद्धान्तों पर हुआ है ?
(३) संघीय सरकार का नियंत्रण राज्यों पर कैसे होता है ?

अध्याय १८

हमारे जीवन की आधुनिक समस्याएँ

अछूतों का प्रश्न

हमारा आधुनिक जीवन अनेक प्रमुख समस्याओं से घिरा है, जिनमें छुआछूत या अस्पृश्यता की समस्या एक है। इस समस्या के पीछे सदियों पुराना भारत का इतिहास है, जिसके पढ़ने से मालूम हो जाता है कि मध्ययुग तक आते-आते हमारा उदार हिन्दू-धर्म संकीर्ण हो चला था और वह जाति-पाँति छुआछूत की बुराइयों से कमजोर होता गया। हमारे व्यवहार का

बड़ा ही बुरा परिणाम अछूतों पर पड़ा। उन्हें समाज से अलग रखा जाता था, उन्हें सार्वजनिक स्थानों का उपयोग नहीं करने दिया जाता था। कुछ लोग उनकी छाया से भी दूर भागते थे। समाज-सुधारकों ने ऐसे व्यवहारों की निन्दा भी की। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि सुधारक संस्थाओं ने इस दिशा में काफी प्रयत्न किये थे; लेकिन विशेष सुधार न हो सका था। अन्त में स्वर्गीय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने हरिजन-आन्दोलन द्वारा हिन्दू-धर्म और समाज से छुआछूत के कोढ़ को हटाना चाहा। बापू के प्रयत्न अद्वितीय और अमर रहेंगे। महात्माजी के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आज हम देख रहे हैं कि भारत से छुआछूत की बीमारी हटती चली जा रही है। हमारे संविधान में छुआछूत को हटाने के लिए प्रत्येक राज्य की सरकार से सिफारिश की गई है। संघ और राज्यों की सरकारों ने तो छुआछूत को एक दण्डनीय अपराध घोषित किया है और हमारा राज्य इस दिशा में बहुत आगे बढ़ चुका है।

अब तो हरिजनों के लिए मन्दिरों के द्वार खुल गये हैं। बहुत अधिक संख्या में उन्हें शिक्षा मिलने लगी है। राज्य-सरकार की ओर से बहुत-सी छात्रवृत्तियां भी मिल रही हैं और स्कूलों तथा कॉलेजों में उनके लिए जगहें सुरक्षित हैं।

राज्य की नौकरियों में भी हरिजनों तथा अनुसूचित जन-जातियों के लिए जगहें सुरक्षित रखी जाती हैं। इन विशेष

सुविधाओं के फलस्वरूप उनकी दशा सुधरने लगी है और उनमें भी काफी जागृति आ रही है। हमारी राज्य-सरकार ने तो एक कल्याण-विभाग ही खोल दिया है, जिसके द्वारा विशेषतः हरिजनों और आदिवासियों की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। पिछड़े वर्गों के पिछड़ेपन के दो-तीन मूल कारण हैं—उनमें शिक्षा का अभाव, उनकी निर्धनता तथा राजनीतिक अधिकारों की भावना का अभाव। अतः उनके कल्याण के लिए कोई नीति तबतक न सफल होगी, जबतक ऊपर के कारणों को दूर न किया जाय। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार ने इनपर पूरे तौर से विचार कर लिया है और इन्हें हटाने की पूरी कोशिश कर रही है। अस्पृश्यता को गैर-कानूनी बतलाया गया है और अब तो किसी को अछूत कहना जुर्म है। हमारा भी यह धर्म है कि योग्य नागरिक बनकर हमलोग ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद-भाव न रखकर सबके साथ प्रेमपूर्वक बरताव रखें, ऐसा करने से इसमें सन्देह नहीं कि कुछ वर्षों में भारतीय समाज से यह कलंक सदा के लिए दूर हो जायगा।

स्मरण रहे कि हरिजनों के अलावा भी हमारे देश और राज्य में और कई पिछड़ी जातियाँ हैं, जिनकी उन्नति और विकास की ओर हमारी सरकार का ध्यान गया है। इन पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए भी नौकरियों और शिक्षा इत्यादि में कई सुविधाएं दी जा रही हैं। विहार-सरकार के कल्याण-विभाग के अधीन कई अधिकारी नियुक्त हुए हैं, जिनका यह काम है कि वे

हरिजनों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को आगे बढ़ाने की कोशिश करें।

आदिवासियों की समस्या

भारत में आदिवासियों की संख्या भी काफी अधिक है। बिहार-राज्य में छोटानागपुर तथा संतालपरगना के जंगली भागों में कोल, संताल, मुण्डा, उरांव, हो, खड़िया, पहाड़िया आदि अनेक जातियाँ वास करती हैं। इन्हें आदिवासी कहते हैं। सभ्यता की दृष्टि से ये अभी बहुत ही पीछे हैं। ईसाई पादरियों ने इनके बीच अपने धर्म का प्रचार किया है और अनेक की संख्या में ये लोग ईसाई बन बैठे हैं। पादरियों के सम्पर्क में आने से इनका मानसिक विकास होता आया है। आज भी इनमें गरीबी और अशिक्षा है। ये लोग बड़े ही सरल तथा सच्चे होते हैं। इन्हें भुलावा देकर लोग अपना उल्लू सीधा किया करते थे। परन्तु हर्ष का विषय है कि अब ये लोग आगे बढ़ रहे हैं और इनमें जागृति आ रही है। इसके फलस्वरूप ये अपने हित-अहित के विषय में सोचने लगे हैं, अतः ये अब किसी गलत रास्ते पर नहीं जायेंगे, ऐसी इनसे आशा की जाती है।

हमारी राज्य-सरकार इन आदिवासियों की उन्नति के लिए काफी प्रयत्न कर रही है। आदिम-जाति-सेवामण्डल, संताल-पहाड़िया-सेवामण्डल आदि-जैसी अनेक संस्थाएं इनको ऊपर उठाने में लगी हुई हैं। बिहार-सरकार द्वारा इन संस्थाओं को

आर्थिक सहायता दी जाती है। राज्य का कल्याण-विभाग इन पर नियन्त्रण रखता है। जगह-जगह पर लड़कों एवं लड़कियों के लिए विद्यालय तथा छात्रावास खोले जा रहे हैं और उन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं। उनकी उच्च शिक्षा के लिए भी उत्तम प्रबन्ध है। राँची में तथा राँची-विश्वविद्यालय के अन्य महाविद्यालयों तथा विभागों में इनके लिए कई स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं और वहाँ इन्हें निःशुल्क शिक्षा भी दी जाती है। कॉलेज के आदिवासी छात्रों के रहने के लिए राँची में एक आदिवासी महाविद्यालय-छात्रावास भी है। इसके अलावा आदिवासियों की संस्कृति, समाज एवं धर्म के विषय में विशेष रूप से अध्ययन के लिए राँची-विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान (एन्थ्रोपॉलोजी) विभाग की स्थापना हुई है। साथ ही, बिहार-राज्य ने इन विषयों पर अनुसन्धान के लिए राँची में एक अनुसन्धान-संस्थान (ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट) भी खोल दिया है। इन सब बातों से यह साफ विदित हो जाता है कि हमारी सरकार इस दिशा में काफी प्रयत्नशील है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ ही वर्षों में आदिवासियों की दशा बहुत कुछ सुधर जायगी और ये लोग अन्य भारतीयों की तरह राष्ट्र-निर्माण में पूर्ण योगदान देंगे।

अभ्यास

(१) हरिजनों की समस्या कैसे हल की जा सकती है ?

(२) आदिवासियों की उन्नति के लिए हमारी राज्य-सरकार क्या कर रही है ?

अध्याय १६

ग्रामोद्धार की समस्या

हमारा ग्राम्य जीवन

हमारी दूसरी बड़ी समस्या है, गांवों का उत्थान। यह तो हमलोग जानते हैं कि भारत गांवों का देश है। यहां लगभग ६ लाख या उससे भी अधिक गांव हैं और ८० फीसदी से भी अधिक भारतीय गांव में रहते हैं। अतः भारत की उन्नति एवं विकास के लिए इन गांवों की उन्नति आवश्यक है।

प्राचीन काल में भारत के गांवों की दशा बहुत ही अच्छी थी। खेती के अलावा यहां तरह-तरह के उद्योग-धन्धे थे, जिनमें गांवों के लोग लगे रहते थे। गांव प्रायः स्वावलम्बी थे। किन्तु अंगरेजी-शासन के अधीन गांवों की दशा शोचनीय हो गई थी। उद्योग-धन्धों के नष्ट होने से उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। आज भी उनकी दशा उतनी अच्छी नहीं है। ग्रामीण प्रायः गरीब हैं, अशिक्षित हैं और स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमों से अनभिज्ञ हैं। गरीबी और अशिक्षा के कारण गांवों में आपसी ईर्ष्या, द्वेष आदि देखे जाते हैं।

ग्रामोद्धार कैसे हो ?

गाँवों की अवस्था को सुधारने के लिए, सबसे पहले वहाँ के लोगों को शिक्षित बनाना आवश्यक है। शिक्षा के बिना वे योग्य नागरिक नहीं बन सकते और न स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमों को ही समझ सकते हैं। साथ-ही-साथ उनकी आर्थिक अवस्था में भी सुधार होना चाहिए। इसके लिए खेती तथा कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहित तथा विकसित करना होगा। गरीबी और अशिक्षा—इन दोनों महान् शत्रुओं की पराजय के बाद ही गाँववालों का जीवन सुखमय हो सकता है। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार इस दिशा में काफी प्रयत्नशील है। परन्तु, सरकार की योजनाएँ जनता के सहयोग के बिना कभी सफल नहीं हो सकती हैं।

ग्रामोद्धार के लिए, ग्राम-पंचायतों की स्थापना एवं उनका उत्तम संगठन बहुत ही जरूरी है। हमारे राज्य में इनका जोरों से संगठन हो रहा है, जिसका विवरण हमलोग इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में ही पा चुके हैं। ग्राम-पंचायतों के द्वारा ही गाँव की समस्याओं की उचित जानकारी और उनका हल सम्भव है। प्रत्येक बड़े गाँव में या दो-तीन छोटे-छोटे गाँवों को मिलाकर एक-एक स्कूल, पुस्तकालय, वाचनालय, खेल-कूद का मैदान, चरागाह इत्यादि का रहना आवश्यक है और इनका प्रबन्ध ग्राम की पंचायतें ही ठीक से कर सकती हैं।

स्वतन्त्र होने के बाद से हमारे देश के नव-निर्माण की समस्या आ पड़ी है। हमें नवभारत की रचना करनी है; ऐसे नवभारत की, जिसका आर्थिक ढांचा सुदृढ़ हो, जो अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आत्मनिर्भर हो; जो संसार का एक महान् और समृद्धशाली राष्ट्र बने। इसके लिए हमारे गाँवों का सुधार होना आवश्यक है।

गाँवों के सुधार के लिए यह आवश्यक है कि गाँव के लोग स्वावलम्बी बनें। उन्हें अपनी मूल आवश्यकताओं की वस्तुओं, अर्थात् भोजन, वस्त्र, घर आदि को स्वयं तैयार करना चाहिए और स्वावलम्बी बनने के लिए जरूरी है कि वे लोग सहयोग से काम करने के तरीकों को सीखें और उनपर चलें। इसलिए, हमारी सरकार गाँवों में सहकारिता-समितियाँ स्थापित कर रही है, जिसके आधार पर लोग अपनी खेती तथा अपने उद्योगों को संगठित करें। ऐसा करने से ही ग्राम्य जीवन में विकास सम्भव है। हमारी सरकार तो गाँववालों को इन दिशाओं में बहुत ही प्रोत्साहित कर रही है, और उन्हें यथासम्भव सहायता भी दे रही है।

पहले से योजना बनाकर जो काम किया जाता है, वह अधिक लाभदायक होता है और उसमें सफलता भी मिलती है। हम एक घर भी बनाते हैं, तो पहले से उसकी रूपरेखा तैयार कर लेते हैं।

फिर, भारत-जैसे विशाल देश के नवनिर्माण के लिए योजना बना लेना बहुत ही आवश्यक था। इसीलिए हमारी सरकार

प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् १९५१–५६ ई० की अवधि की बनायी। इस योजना के द्वारा देश में नदियों पर बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया गया है, जिनसे सिंचाई और बिजली पैदा की जा रही है। इससे हमारे देश का उत्पादन काफी बढ़ गया है और दिन-पर-दिन प्रगति होती जा रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गाँवों के विकास पर काफी जोर दिया गया था।

इस योजना के अन्तर्गत गाँवों के विकास के लिए सामुदायिक विकास-प्रायोजनाएं बनायी गयीं, जिनका वर्णन आगे दिया गया है। सन् १९५६ ई० में हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना लागू की गयी और इससे अधिक विकास संभव हुआ है। सन् १९६१ ई० से हमारी तृतीय पंचवर्षीय योजना लागू है।

बिहार में सामुदायिक विकास-प्रायोजना (कम्युनिटी प्रोजेक्ट)

बिहार राज्य में २ अक्टूबर १९५२ ई०, को सामुदायिक विकास-प्रायोजना का उद्घाटन हुआ। इस प्रायोजना के पीछे मूल-भूत सिद्धान्त यह है कि ग्रामीण जीवन एक सम्पूर्ण इकाई है, और इसके सभी अंगों का विकास, एक ही सामूहिक रूप से होना चाहिए। इसका उद्देश्य गाँवों के लिए केवल पर्याप्त भोजन, आवास, स्वास्थ्य तथा मनोरंजन का प्रबन्ध ही करना नहीं है। इन सबसे महत्त्वपूर्ण जो बात है, वह है, जनता के दृष्टिकोण में परिवर्त्तन लाना—एक उच्चतर जीवन बिताने की इच्छा तथा उसके लिए दृढ़तापूर्वक कार्य करने का संकल्प पैदा करना। सामुदायिक विकास-प्रायोजना का मुख्य

उद्देश्य स्थानीय जनता में नवजीवन का संचार कर, ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को समुन्नत बनाने की पूरी चेष्टा
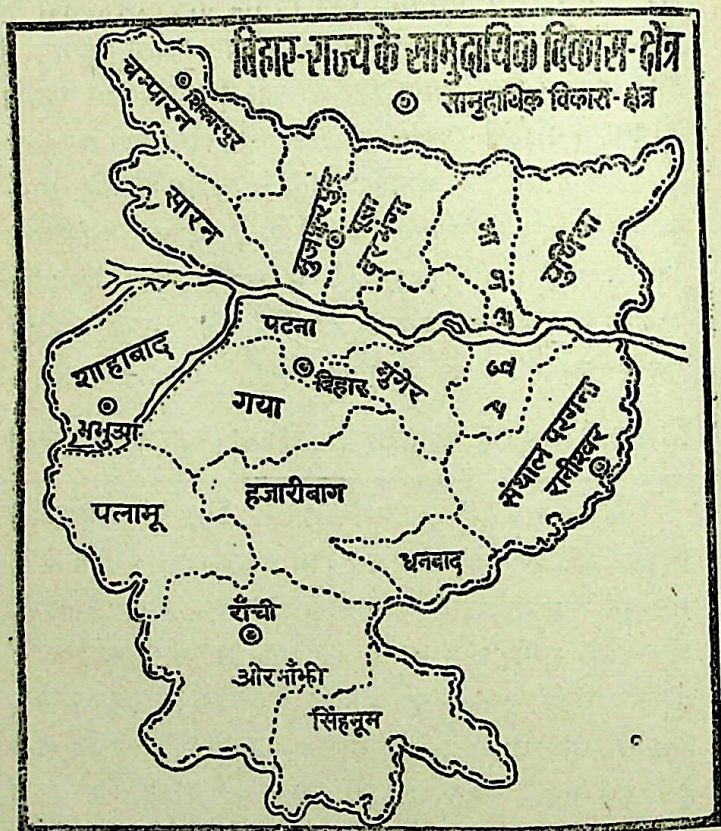
करना ही है। इस प्रायोजना का यह भी उद्देश्य है कि देश के विभिन्न भागों में किये गये विकास-कार्यों से पाये गये

अनुभव का कैसा उचित समन्वय किया जाय। सामाजिक कल्याण इनका परम लक्ष्य है। बिहार में मार्च, १९५५ ई० तक इस योजना के अन्तर्गत चार प्रायोजना-केन्द्रों और तीन विकास-खण्डों में कार्य आरम्भ किया गयाँ। इनमें हुरा-विकास-खण्ड अब पश्चिम बंगाल में चला गया है। शेष के नाम ये हैं—

(क) बिहार एकंगरसराय-बरबीघा (दक्षिण बिहार)
(ख) पूसा-समस्तीपुर-सकरा (उत्तर बिहार)
(ग) भभुआ-मोहनिया-सहसराम (दक्षिण बिहार)
(घ) ओरमांझी-राँची-माण्डर (छोटानागपुर)
(ङ) रानीश्वर-विकास-खंड (दक्षिण बिहार, संतालपरगना)
(च) शिकारपुर विकास-खंड (चम्पारन जिला)

इन प्रायोजना-केन्द्रों तथा विकास-खण्डों द्वारा लगभग १,६०० वर्गमील के क्षेत्रफल में विकास-कार्य आरम्भ हुआ है, जिनमें लगभग दो हजार गांव और बारह लाख व्यक्ति निवास करते हैं। इन केन्द्रों तथा खण्डों द्वारा ग्रामों में कृषि, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, नियुक्तियाँ, आवास, सामाजिक कल्याण आदि के विकास पर जोर दिया गया है।

बिहार एकंगरसराय-बरबीघा-प्रायोजना—यह प्रायोजना-क्षेत्र २७५ वर्गमील में है। इसमें कुल ३३३ गांव शामिल हैं, जिनकी आबादी ३,१०,८०९ है।

बिहार में पंच वर्षीय-योजना : १९५१-५२ से १९५५-५६

.. ग्राम-विकास के लिये सामुदायिक योजना ..

योजना	ग्राम	क्षेत्रफल	जनसंख्या
बिहार-एकंगरसराय-बरबीघा	३३३	२६५ व०मील	३,१०,८७७
पूसा-समस्तीपुर-सकरा	३३२	२६० ,,	३,१६,५२७
भभुआ-मोहनिया-सासाराम	६३३	४४० ,,	२,३६,२१९
ओरमाँझी-राँची - मांडर	३००	३५९ ,,	२,८८,०६९
रानीश्वर-विकास	१३२	८० ,,	२८,३६७
शिकारपुर-विकास	१४५	७७ ,,	३८,१३८

बिहार में पंचवर्षीय योजना

..१९५१-५२ से १९५५-५६..

कृषि और ग्राम-विकास

▭ = ८ योजनायें

	योजनायें	
कृषि	३०	१२८४·३ लाख रु०
पशु-चिकित्सा और पशु-पालन	२०	८२·५ लाख रु०
दुग्ध-शाला और दुग्ध-वितरण	२	१·५ लाख रु०
वन-वैभव	२	१२५ लाख रु०
सहकारिता	६	३८ लाख रु०
मत्स्य पालन	६	१०·६ लाख रु०
ग्राम-विकास	१	१२४·६ लाख रु०
कुल योजनायें ८०		कुल राशि १६६६·५ लाख रुपये

धान की पैदावार बढ़ाने के लिए किसानों में उन्नत किस्म के धान के बीज और खाद बांटी गई है। किसानों को उन्नत ढंग से खेती करने की विधि समझाने के लिए जगह-जगह पर हजारों प्रदर्शन-क्षेत्र स्थापित किये गये हैं। पशु-पालन पर भी जोर दिया जा रहा है।

सिंचाई की सुविधा के लिए १३ लघु-सिंचाई-योजनाओं में काम लगा है, जिसमें एक-चौथाई योजनाएं पूरी हो चुकी हैं। उनके द्वारा ३४६७ एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। पैमार, कुलटी और नन्दाने-भरथुआ की तीन बड़ी प्रायोजनाएं भी तैयार हो रही हैं।

स्वास्थ्य-सुरक्षा और शिक्षा-प्रसार का काम जोर-शोर से हो रहा है। ११ अवर वुनियादी विद्यालय खोले गये हैं।

कुटीर-उद्योगों के विकास के लिए १० प्रशिक्षण-केन्द्र खोले गये हैं।

सड़कों और पुलों की मरम्मत का काम ग्रामीण जनता के सहयोग से हो रहा है। ४० मील कच्ची सड़कों की मरम्मत की जा चुकी है। कई पुल भी बनाये गये हैं।

पूसा-समस्तीपुर-शकरा-प्रायोजना—इसका क्षेत्र २७० वर्गमील में है। इसमें कुल ३२२ गांव हैं, जिनकी आबादी ३ लाख १७ हजार ५ सौ २९ है।

खेती की उन्नति के लिए इस प्रायोजना-क्षेत्र में भी किसानों में उन्नत किस्म के बीज बांटे गये हैं, जिससे रब्बी की फसल बहुत
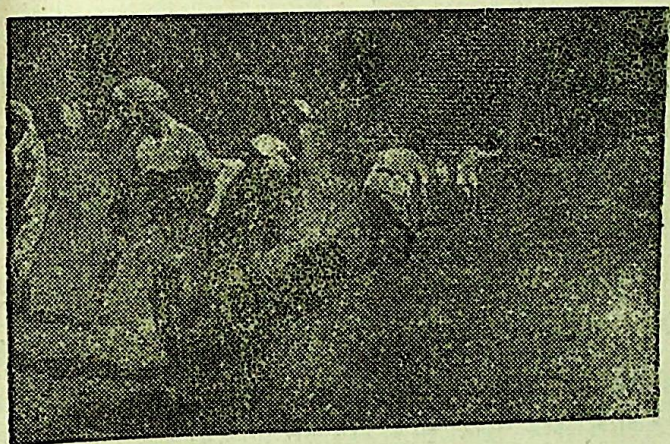
सामुदायिक सड़क-निर्माण
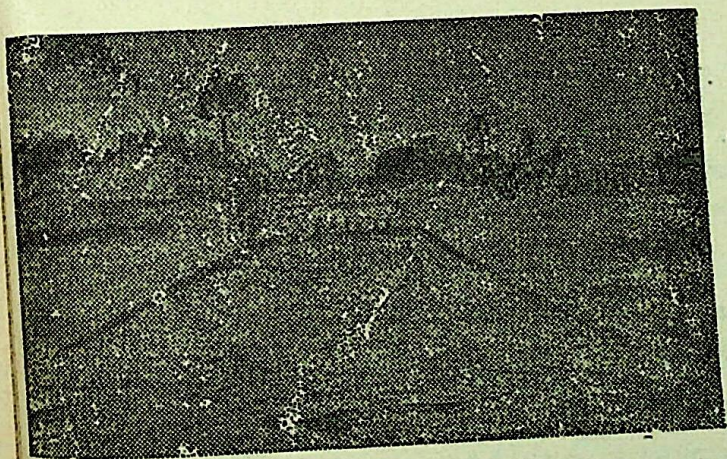
शकरा-बाँध का एक दृश्य

अच्छी हुई है। मकई की फसल भी अच्छी हुई है। जो जमीन बरसात में पानी में डूब जाती थी, उसमें गरमी के मौसम में होनेवाली मकई की खेती की जाती है।

पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए ग्रामीणों को हरियाना सांड़ दिये गये हैं।

सिंचाई की कई योजनाएं चालू की जा रही हैं। २४ नलकूप बिठाये गये हैं। कुल नब्बे नलकूप बिठाये जाने की योजना है।

सिंचाई की १० लघु योजनाओं में काम लग गया है। १९ मील लम्बा सुरक्षात्मक बांध बनाया गया है।

शिक्षा, स्वास्थ्य और कुटीर-उद्योगों की उन्नति की ओर काफी ध्यान दिया जा रहा है।

इस क्षेत्र में शिक्षा के प्रचार के लिए नये विद्यालय खोले जा रहे हैं। २० नये बुनियादी विद्यालय खोले गये हैं और २३ पुराने प्राथमिक विद्यालय, बुनियादी विद्यालयों के रूप में बदल दिये गये हैं। ११२ ग्रामीण पुस्तकालयों तथा २७० रात्रि-पाठशालाओं की भी स्थापना की गई है।

प्रायोजना के कार्यकर्त्ताओं द्वारा ५६ मील लम्बी सड़कों की मरम्मत और निर्माण का काम हुआ है। कुटीर-उद्योगों के विकास के लिए प्रशिक्षण और उत्पादन-केन्द्रों की स्थापना की गई है, जिनमें चमड़े के काम, लोहे के काम, साबुन बनाने के काम, कसीदा काढ़ने के काम, मधुमक्खी पालने और बुनाई के काम की शिक्षा दी जाती है।
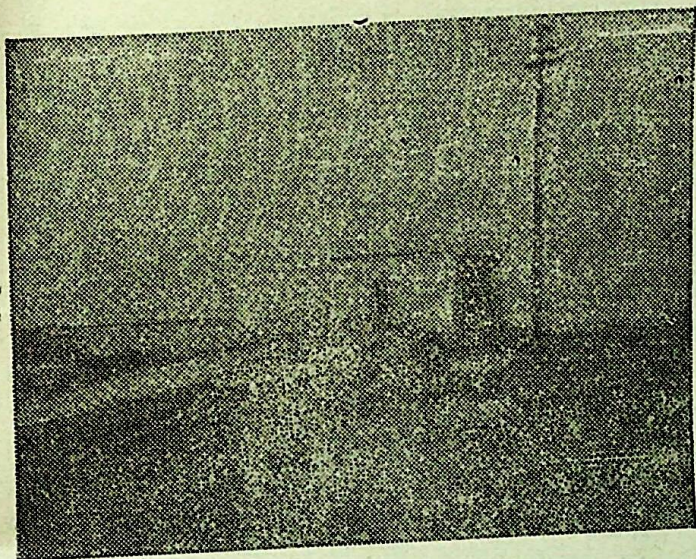
गंगा से जल खींचता हुआ एक नदी-पम्प

चमड़े के उद्योग का एक प्रशिक्षण-केन्द्र

भभुग्रा-मोहनिया-सहसराम-प्रायोजना—४४० वर्गमील के इस क्षेत्र में कुल ६९३ गाँव हैं, जिसकी ग्राबादी २,२६,२१६ है।

खेती की उन्नति के लिए खाद ग्रोर ग्रच्छे बीज ग्रामीणों में बाँटे गये हैं। जापानी तरीके से खेती करने का तरीका समझाया जा रहा है। इस क्षेत्र में बहुफसली खेती, शाक-सब्जी की खेती ग्रोर वृक्ष रोपने का सराहनीय काम हुग्रा है। कम्पोस्ट खाद के ६,२७८ गड्ढे तैयार किये गये हैं। पशु-पालन का काम भी किया जा रहा है।
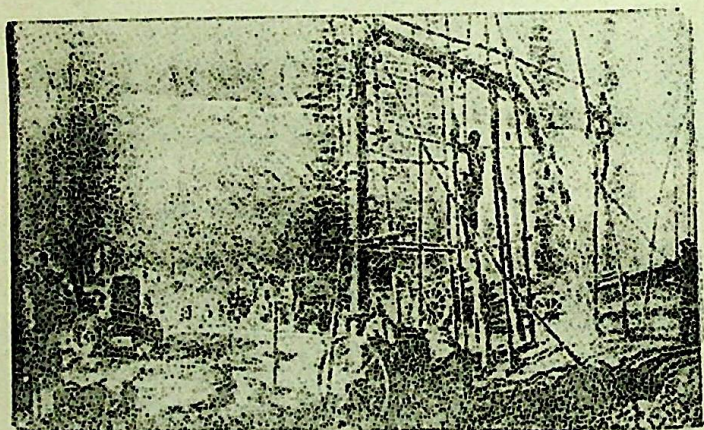
बिजली द्वारा सिंचाई की व्यवस्था

सिंचाई के लिए दुर्गावती ग्रोर सुग्ररा नदियों पर बांध बनाने की दो बड़ी योजनाएँ बनाई गई हैं।

इनके ग्रतिरिक्त कच्चे बाँधों, ग्राहर ग्रौर पइनों द्वारा सिंचाई के काम में विकास किया जा रहा है।

शिक्षा की उन्नति के लिए २० नये अवर बुनियादी विद्यालय खोले गये हैं। ५५ प्राथमिक विद्यालयों को अवर बुनियादी विद्यालयों में बदलने की योजना है। गाँववालों के श्रमदान से सड़कों का सुधार किया जा रहा है। २५ मील लम्बी सड़कें तैयार की जा चुकी हैं।

शिल्प और उद्योग की उन्नति के लिए ५ उत्पादन-प्रशिक्षण-केन्द्र खोले गये हैं।

ओरमांझी-राँची-मांडर-योजना—इसका विस्तार ३५६ वर्ग-मील में है। लगभग २०० गांव हैं, आबादी २,८८,०६५ है।

इस क्षेत्र में किसानों में उत्तम बीज और खाद बांटकर तथा जापानी ढंग से धान की खेती करने की शिक्षा देने का सराहनीय काम हुआ है। सिंचाई की १ बड़ी और ७ लघु योजनाओं में काम हो रहा है।

जनता की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ग्राम-सफाई का काम तेजी से किया जा रहा है।

इस केन्द्र में पिछड़े लोगों की संख्या अधिक है। उनकी शिक्षा की उन्नति के लिए २० बुनियादी विद्यालय, ६५ अन्य विद्यालय, उच्च विद्यालय और एक प्रवर बुनियादी विद्यालय सफलतापूर्वक चल रहा है। २७४ रात्रि पाठशालाएं चल रही हैं। छात्र-सैन्यदल द्वारा ग्रामवासियों के सहयोग से सड़कों के सुधार का काम हो रहा है।

रानीश्वर विकास खण्ड—यह संथालपरगना में पड़ता है। क्षेत्रफल ८० वर्गमील है। कुल १३२ गाँव हैं, जनसंख्या २८,३७९ है।

खेती की उन्नति के लिए उन्नत बीज और खाद बाँटी गई है। कम्पोस्ट खाद के ३,५५७ गड्ढे खोदे गये हैं। जापानी ढंग से धान की खेती शुरू की गई है। १,६६१ मन खाद और ४७८ मन उन्नत बीज बाँटे गये हैं।

पशुओं को रोग से बचाने के लिए सूई देने का काम किया गया है। उनके लिए १० पक्की नादें बनाई गई हैं और १० उन्नत किस्म के साँड़ बाँटे गये हैं।

सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में भी सन्तोषजनक काम हो रहा है। ६३ सामाजिक शिक्षण-केन्द्र खोले गये हैं, जिनमें २,१६० निरक्षर व्यक्ति पढ़ रहे हैं। १६ बुनियादी विद्यालय खोले गये हैं।

शिकारपुर विकास-खण्ड—यह चम्पारण जिला में है। इसमें कुल १४५ गाँव हैं, क्षेत्रफल ९९ वर्गमील और जनसंख्या ३८,१३८ है। सिंचाई की उन्नति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य पंडाई नदी में बाँध का निर्माण है। इसके द्वारा १,००० एकड़ धान के खेत की सिंचाई हुई है। खेती की उन्नति के लिए कम्पोस्ट की खाद के २२५ गड्ढे खोदे गये हैं।

राष्ट्रीय विस्तार सेवा—ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए एक दूसरा आन्दोलन भी, सामुदायिक विकास-प्रायोजना
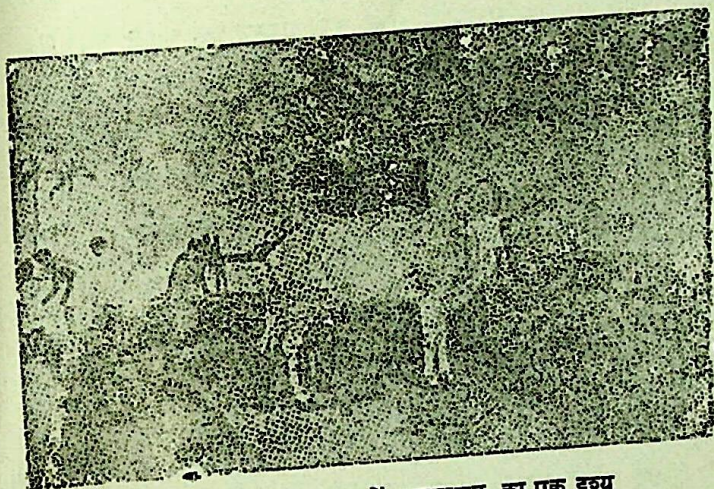
रानीश्वर विकास खण्ड में पशुपालन का एक दृश्य

पण्डाई नदी का एक बाँध

के प्रारम्भ से ठीक एक वर्ष बाद (२ अक्टूबर १९५३ को) शुरू किया गया—इसका नाम है 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' (नेशनल एक्सटेन्शन सर्विस)। १९५४ ई० के ३१ दिसम्बर तक बिहार में ३४ क्षेत्रों में राष्ट्रीय विस्तार सेवा का कार्य प्रारम्भ हुआ। दूसरी पंचवर्षीय योजना (१९५६-६१) के अन्तर्गत इन दोनों आन्दोलनों द्वारा और भी अधिक ग्रामों को लाभ पहुँचाया गया है। तृतीय पंचवर्षीय योजना (१९६१-६६) के अन्तर्गत इसमें और अधिक विकास संभव हो सकेगा, ऐसी आशा की जाती है।

कई गाँवों को मिलाकर एक 'प्रखण्ड' बनाया गया है, और प्रत्येक परिमण्डल को एक सरकारी अधिकारी के अधीन रखा गया है, जिसे प्रखण्ड विकास पदाधिकारी कहा जाता है। प्रखण्ड विकास पदाधिकारी का काम है, अपने प्रखण्ड के लोगों की सर्वांगीण उन्नति करना।

आजकल हमारे राज्य में विकास-प्रखण्डों की संख्या ५८१ है। ६ और प्रखण्ड खोले जानेवाले हैं। भारत के संविधान में जन-जातियों के विकास के लिए खास ध्यान देने का आदेश है। इन आदेश के अनुसार, जन-जातियों के सर्वांगीण उत्थान के लिए खास ढंग के विकास-प्रखण्ड खोलने का निश्चय किया गया है। ३४ ऐसे प्रखण्ड खोले जा चुके हैं। १७ और प्रखण्ड खोलने का विचार है।

अभ्यास

(१) हमारे गाँवों की मुख्य समस्याएँ कौन-कौन हैं ?
(२) गाँवों का पुनःसंगठन कैसे हो सकता है ?
(३) बिहार सरकार ग्रामोद्धार के लिए क्या-क्या कर रही है ?
(४) बिहार में सामुदायिक विकास प्रायोजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्दर क्या-क्या किया जा रहा है ?
(५) शिकारपुर विकास-खण्ड द्वारा किये गये कामों का संक्षेप में वर्णन करें।

अध्याय २०

सार्वजनिक शिक्षा की समस्या

किसी भी लोकतान्त्रिक राज्य के विकास और उसके सुशासन के लिए यह बहुत ही जरूरी है कि उसके अधिकांश नागरिक शिक्षित हों और अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को उचित रूप में समझते हों। शिक्षा के अभाव में कोई भी लोकतन्त्र ठीक से नहीं चल सकता। शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लेना ही नहीं है, बल्कि उसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि लोगों को सभ्य समाज में रहने का उचित ज्ञान मिल सका है या नहीं। ऐसे शिक्षित नागरिक ही अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को ठीक से समझ सकते हैं और

उसका पालन कर सकते हैं। गाँवों में अशिक्षा अधिक है। शिक्षा के अभाव के कारण भारतीय ग्रामीणों के बीच गन्दगी, निराशा, अन्धविश्वास आदि बुराइयाँ आ गई हैं। शिक्षित होकर हमारे ग्रामीण नये युग के साथ चलना सीखेंगे और ज्ञान-विज्ञान की नयी-नयी खोजों को काम में लाकर अपनी व्यवस्था सुधार सकेंगे।

अतः, सरकार का यह पहला कर्त्तव्य होता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा के लिए सुन्दर प्रबन्ध करे। शिक्षा पाने का अधिकार सबको है, चाहे वह अमीर हो या गरीब। गरीबों की शिक्षा तभी सम्भव है, जब कि सरकार कम-से-कम प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं तक निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करे। हमारे देश के लिए तो यह और भी आवश्यक है। कारण कि यहाँ की अधिकांश जनता, निर्धनता के कारण विद्यालयों में न जा सकेगी। हमारे संविधान में भी १४ वर्ष तक के सभी बालक-बालिकाओं के लिए निःशुल्क संविधान के लागू होने के दस वर्षों के भीतर ही प्राप्त हो जानी चाहिए थी। लेकिन कई कारणों से ऐसा नहीं हो सका है। फिर भी, शिक्षा का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है।

शिक्षा-प्रचार के लिए हमारी संघीय सरकार और राज्य-सरकार काफी प्रयत्न कर रही हैं। संघ द्वारा आर्थिक सहायता पाकर राज्य-सरकार अनेक प्राथमिक विद्यालय खोल रही है।

बहुत-से माध्यमिक विद्यालय तथा महाविद्यालय भी खोले जा रहे हैं, जिनके द्वारा उच्च शिक्षा का प्रसार भी हो सकेगा। हमारे राज्य में पहले एक ही विश्वविद्यालय था—पटना-विश्वविद्यालय। परन्तु आजकल पाँच विश्वविद्यालय हो गये हैं—पटना, बिहार, राँची, भागलपुर तथा मगध-विश्वविद्यालय। इन पाँच विश्वविद्यालयों के अलावा दरभंगा में एक संस्कृत विश्वविद्यालय भी है। विद्यालय के शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने के लिए पटना ट्रेनिंग कॉलिज तथा पटना वीमेन्स ट्रेनिंग कॉलेज के अलावा भागलपुर, राँची और तुर्की में भी, प्रशिक्षण-महाविद्यालय खुल गये हैं। दो नये शिक्षक-प्रशिक्षण-महाविद्यालय भी खुले हैं—एक देवघर में, दूसरा समस्तीपुर में। इस तरह शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या ७ हो गयी है। पटना को छोड़कर दरभंगा, राँची और जमशेदपुर में भी चिकित्सा-महाविद्यालय तथा मुजफ्फरपुर में, मेसरा (राँची के निकट), सिन्दरी (धनबाद के निकट) तथा जमशेदपुर में अभियान्त्रिक महाविद्यालय खोले गये हैं। भागलपुर में भी अभियान्त्रिक और चिकित्सा-महाविद्यालय खुल रहे हैं।

कृषि और उद्योग की शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध किया गया है। कृषि-विज्ञान में सर्वोच्च शिक्षा देने के लिए हमारे राज्य में, सबौर तथा राँची-कृषि-महाविद्यालय हैं, और इनके अलावा कांके (राँची), सापेया (सारन), पूसा (दरभंगा) और गया में भी कृषि-केन्द्र चल रहे हैं, जहाँ अनेक छात्र खेती के

सम्बन्ध में प्रशिक्षण पा रहे हैं। पटना और राँची में पशुओं के लिए अस्पताल और उनके सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए महाविद्यालय हैं।

बुनियादी (बेसिक) शिक्षा का प्रचार भी हमारे राज्य में जोरों से हो रहा है और अनेक बुनियादी विद्यालय-शिक्षण-केन्द्र खोले गये हैं। इन विद्यालयों में विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनने का पाठ पढ़ाया जाता है और उन्हें व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, जिससे कि वे अपने भावी जीवन में सफल हो सकें। मुजफ्फरपुर जिले के तुर्की नामक स्थान में एक सर्वोदय महाविद्यालय खोला गया है, और इनके अलावा शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए लगभग १०० प्रशिक्षण-विद्यालय भी खोले गये हैं। हमारी राज्य-सरकार एक ग्राम-विश्वविद्यालय (रूरल यूनिवर्सिटी) भी कायम करना चाहती है।

परन्तु, सार्वजनिक शिक्षा के प्रचार के लिए सयानों के पढ़ाने का प्रबन्ध जगह-जगह पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना अत्यन्त ही आवश्यक है। हमारी राज-सरकार का सामाजिक शिक्षा-बोर्ड इस दिशा में बहुत ही प्रयत्नशील है। सैकड़ों सामाजिक-शिक्षा-केन्द्र खोले गये हैं, जहाँ रेडियो और समाचार-पत्रों की व्यवस्था की गई है। गाँव-गाँव में पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है और उन्हें सरकार आर्थिक सहायता दे रही है। प्रत्येक जिले में एक-एक राजकीय पुस्तकालय भी खोला जा रहा है। पुस्तकालयों की बढ़ती हुई संख्या के

निरीक्षण और उनके संगठन के लिए राज्य-सरकार ने एक पुस्तकालय-अधीक्षक नियुक्त किया है। पुस्तकालयों और वाचनालयों के रहने से ग्रामीण अपने विचारों का आदान-प्रदान करेंगे और अपनी मानसिक उन्नति कर सकेंगे। सयानों की शिक्षा के लिए कई रात्रि-पाठशालाएँ भी चल रही हैं, जहाँ उन्हें अवकाश के समय साधारण शिक्षा दी जाती है।

महिलाओं की शिक्षा के लिए भी हमारी राज्य-सरकार ने काफी प्रबन्ध किया है, जिसका विवरण आगे के अध्याय में मिलेगा।

अभ्यास

(१) सार्वजनिक शिक्षा की आवश्यकता क्यों है ?

(२) हमारी राज्य-सरकार ने उच्च शिक्षा के विकास के लिए क्या-क्या किया है ?

(३) बिहार-सरकार ने प्राथमिक, बेसिक और माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए क्या किया है ?

अध्याय २१

नारी-विकास की समस्या

राष्ट्र की उन्नति के लिए नर और नारी दोनों का सहयोग आवश्यक है। वह राष्ट्र कभी उठ नहीं सकता, जहाँ नारी का स्थान समाज में पुरुषों से नीचे हो और जहाँ उनको घृणा और अनादर की दृष्टि से देखा जाता हो। वीर, शिक्षित और सभ्य सन्तान को जन्म देने के लिए आवश्यक है कि माताएं भी स्वस्थ, साहसी और पढ़ी-लिखी हों। बच्चा अपनी माता से बहुत-कुछ ग्रहण करता है। जैसी माता होगी, लगभग वैसी ही सन्तान भी होगी। इसलिए कहा गया है कि माता बच्चों के लिए प्रथम पाठशाला है।

अतः, यह आवश्यक है कि नारियों के विकास के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया जाय। हर्ष का विषय है कि हमारी राष्ट्रीय और राज्य-सरकारें इस दिशा में बहुत ही प्रयत्नशील हैं। नारी-शिक्षा का विकास जोरों से हो रहा है। बिहार के प्रत्येक जिले में एक-एक सरकारी बालिका-विद्यालय स्थापित किया जा रहा है और उनकी उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध हुआ है। पटना में दो उच्च कोटि के महिला-महाविद्यालय हैं—मगध महिला-महाविद्यालय और पटना वीमेन्स कॉलेज। इसके अलावा रांची-

भागलपुर, मुजफ्फरपुर, जमशेदपुर, धनबाद, गया, आरा आदि शहरों में भी महिला-महाविद्यालय खोले गये हैं। इन महिला-महाविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य महाविद्यालयों में लड़कों के साथ-ही-साथ लड़कियों के भी पढ़ने का प्रबन्ध है। खर्च की बचत के लिए सहशिक्षा का होना आवश्यक है। लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग कला, विज्ञान, चिकित्सा, अभियन्त्रणा आदि महाविद्यालयों को खोलने से दुहरा खर्च बैठ जायगा। इसलिए, दोनों साथ-साथ पढ़ें, तो खर्च भी कम पड़ेगा और पारस्परिक सम्पर्क से उन्हें अपने भावी जीवन की समस्याओं को समझने का भी अवसर प्राप्त होगा।

हमारे संविधान में स्त्री-पुरुष का भेद-भाव, शिक्षा, राजनीति नौकरी इत्यादि क्षेत्रों से हटा दिया गया है। स्त्रियों के लिए भी अब संघीय या राज्यकीय सरकारों के अधीन नौकरियों का दरवाजा खोल दिया गया है। अब तो कोई भी योग्य और पढ़ी-लिखी नारी पुरुषों की तरह प्रोफेसर, शिक्षक, दण्डनायक, चिकित्सक, विधिज्ञ (वकील), राजनीतिज्ञ अथवा कोई भी पद पाने का स्वप्न देख सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि अभी कुछ ऐसी कुप्रथाएं हैं, जिनसे नारियों के विकास में बाधा पड़ रही है; जैसे, परदे की प्रथा, तिलक-दहेज की प्रथा, बाल-विवाह, पुत्रियों के प्रति उदासीनता का भाव आदि। परदे की प्रथा से नारियों में शिक्षा-प्रसार के कार्य में बाधा तो पड़ती ही है, साथ ही उनमें स्वतन्त्रता की

भावना का विकास नहीं होने पाता। फलस्वरूप, वे सर्वदा कूप-मण्डूक बनकर पुरुषों पर बोझ बनी रहती हैं। नाना प्रकार के अन्धविश्वास का शिकार भी वे बनी रहती हैं। यद्यपि परदे का महत्त्व अब समाज में बहुत कम होने लगा है, फिर भी जबतक उसका पूर्ण रूप से नाश न हो जाय, नारी-विकास सम्भव नहीं। शहरों की अपेक्षा गाँवों में यह प्रथा अब भी जोरों से प्रचलित है। जैसे-जैसे शिक्षा का विकास होगा, इस प्रथा की कब्र खुदती जायगी।

इसी प्रकार, बाल-विवाह और तिलक-दहेज की प्रथाओं ने नारियों के विकास को रोक दिया है, और उनके प्रति समाज में निरादर की भावना भर दी है। बाल-विवाह के कारण तो लड़कियों की शिक्षा भी रुक जाती है। विवाह के बाद उनका विद्यालय और महाविद्यालय जाना अधिकतर बन्द ही हो जाता है।

जो भी हो, हमें समाज में स्त्रियों के प्रति आदर का भाव उत्पन्न करना होगा। उनकी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध, विशेषतः गाँवों के लिए करना होगा। गाँवों में तो उच्च बालिका-विद्यालय नहीं के बराबर हैं। जबतक गाँवों में उनकी शिक्षा की उचित सुविधा न होगी, वहाँ की बालिकाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त न हो सकेगी; क्योंकि कई कारणों से ग्रामीण अपनी कन्याओं को दूर के शहरों में शिक्षा के लिए नहीं भेज सकते।

सबसे तो प्रधान बात यह है कि जबतक समाज में नर और नारी दोनों बराबर स्थान नहीं पा लेते; नारी-विकास

कठिन है, साथ ही राष्ट्र का विकास भी तबतक सम्भव नहीं। राष्ट्र की गाड़ी तभी ठीक से चल सकती है, जब कि नर-नारी के रूप में उनके दोनों पहिये बराबर और मजबूत रहें। सन्तोष इसी में है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार इसके लिए भी काफी चेष्टाएँ कर रही है। नारी-जागरण के लिए उसे स्वतन्त्रता मिलना आवश्यक है। अब तो 'विशेष विवाह-कानून' (स्पेशल मैरेज ऐक्ट, १९५४) के अनुसार विवाह-सम्बन्धी काफी स्वतन्त्रता दी गई है। हिन्दू-विवाह-कानून भी अब पास हो गया है, जिसमें स्त्री-पुरुष की समानता का सिद्धान्त मान लिया गया है और विवाह-विच्छेद (तलाक) की व्यवस्था की गयी है। अब तो पैतृक सम्पत्ति में बालिकाओं को हिस्सा मिलने की बात भी निश्चित हो गयी है, जिससे नारियों की आर्थिक स्वतन्त्रता बहुत अंशों में सम्भव हो सकेगी। सन्देह नहीं कि इन सब कानूनों से नारी-समाज की अवस्था को सुधारने में सहायता मिलेगी।

अभ्यास

(१) नारियों को शिक्षित बनाना क्यों आवश्यक है ?
(२) नारी-विकास में कौन-कौन-सी बाधाएँ हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ?
(३) नारी-सुधार पर एक लेख लिखिए।

अध्याय २२

भाषाओं का प्रश्न

हमारे देश में भाषाओं की समस्या एक अत्यन्त ही जटिल समस्या है। देश काफी बड़ा है और तरह-तरह के लोग यहां वास करते हैं। इसीलिए, यहां अनेक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें मुख्य हैं—हिन्दी, बँगला, उर्दू, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, कन्नड़, मलयालम आदि। बिहार-राज्य में ही कई भाषाएं तथा बोलियां प्रचलित हैं; जैसे—हिन्दी, मैथिली, भोजपुरी, मगही, संताली आदि। इसी तरह प्रत्येक राज्य में अनेक भाषाएं तथा बोलियां व्यवहार में आती हैं।

स्वतन्त्रता मिलने के बाद जब भारत सच्चे अर्थ में एक राष्ट्र बना, तब इसके लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पड़ी। इस प्रश्न पर काफी दिनों तक बहस चलने के बाद, अन्त में, १९५० ई० के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है। संविधान में यह भी लिखा हुआ है कि इसके लागू होने से लेकर १५ वर्ष के भीतर ही, अर्थात् १९६५ ई० तक हिन्दी में सभी सरकारी कार्य होने लगेंगे, और धीरे-धीरे अँगरेजी का स्थान हिन्दी ले लेगी। हमारी केन्द्र-सरकार इस अवधि को

बढ़ाने के विषय में सोच रही है। अंगरेजी एक अन्तरराष्ट्रीय भाषा हो गयी है और इसे एकदम छोड़ देना भी उचित नहीं होगा। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह अर्थ नहीं कि राज्य की अन्य भाषाएँ या बोलियाँ नष्ट कर दी जायँगी और सब पर हिन्दी लाद दी जायगी। राष्ट्रभाषा के साथ-ही-साथ अन्य प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति और विकास भी आवश्यक है। अब तो इस सिद्धान्त को मान ही लिया गया है कि बच्चों की शिक्षा उनकी मातृभाषा और प्रादेशिक भाषा में ही होनी चाहिए। परन्तु, राष्ट्रभाषा का पढ़ना भी अनिवार्य होना चाहिए।। राष्ट्रभाषा प्रादेशिक भाषाओं का शत्रु नहीं है। दोनों का विकास दोनों की उन्नति के लिए आवश्यक है। हमारी सरकार इसी सिद्धान्त कर चल रही है। राष्ट्रभाषा की उन्नति के साथ ही प्रादेशिक या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों की भी व्यवस्था की गयी है। प्रादेशिक भाषाओं के विकास के विना किसी भी क्षेत्र की संस्कृति का पूरा परिचय नहीं मिल सकता और न लोक-साहित्य की ही उन्नति हो सकती है। हमारी सरकार क्षेत्रीय भाषाओं में लिखित पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करा रही है, और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यों के संग्रह भी प्रकाशित किये जा रहे हैं। बिहार-राज्य में इन कार्यों के लिए बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् स्थापित हुई है।

भारत में भाषाओं की समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। हमारे देश के कुछ विद्वानों का यह मत है कि भाषाओं के आधार

पर राज्यों का फिर से संगठन किया जाय। सन् १९५२-५३ ई० में भाषा के आधार पर ही मद्रास से आन्ध्र को अलग करके एक नया राज्य बना दिया गया। परन्तु, भाषा के आधार पर राज्यों का गठन करने से हमारा देश अनेक टुकड़ों में बंट जायगा और यह आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं हो सकेगा। इसलिए, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त राज्य-पुनस्संगठन-आयोग ने केवल भाषा के आधार पर ही नहीं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को भी ध्यान में रखकर भारतीय राज्यों के पुनस्संगठन की सिफारिश की। इन सिफारिशों के अनुसार राज्यों का पुनस्संगठन किया गया। अब भारतीय संघ के अन्तर्गत १६ राज्य और कई केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश हैं।

अभ्यास

(१) हमारे देश में भाषा की समस्या क्यों जटिल हो गयी ?

(२) राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओं के विकास में आपसी सम्बन्ध क्या है ?

(३) भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनस्संठन कहाँतक उचित है ? भारतीय राज्यों का नवनिर्माण कैसे हुआ है ?

अध्याय २३

खेती, भोजन और उद्योग

खेती और भोजन

इन दोनों समस्याओं में काफी गहरा सम्बन्ध है और ये एक दूसरी पर निर्भर करती हैं। भोजन में सुधार और वृद्धि के लिए कृषि में भी सुधार और उन्नति की आवश्यकता होगी और यह समस्या तो हमारे देश में काफी जटिल हो गई है। दिनानुदिन बढ़ती हुई आबादी को भोजन देने की समस्या आसान नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध, अर्थात् १९४५ ई० के बाद तो यह समस्या हमारे लिए विकराल बन गई थी और खाने की चीजों की मँहगी बहुत बढ़ गयी थी। भारत-सरकार को विदेशों से काफी मात्रा में खाने की चीजों को मँगाना पड़ा। चीजों पर नियन्त्रण (कंट्रोल) किया गया और जनसाधारण को अनेक कष्ट झेलने पड़े। गत स्वतन्त्रता के बाद, हमारी राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्नों के कारण खाद्यान्नों की उपज कुछ बढ़ गयी है। लेकिन अब भी हमारी भोजन की समस्या सुलझ नहीं पायी है। इधर कुछ महीनों से खाद्यान्नों का मूल्य बहुत बढ़ गया है, जिससे लोगों को काफी कठिनाई हो रही है।

भोजन की समस्या को हल करने के लिए खेती में काफी सुधार और उन्नति करनी होगी, जिससे कि अधिक अन्न उपजाया जा सके। कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई का सुन्दर प्रबन्ध, उत्तम खाद देने की व्यवस्था, जमीन को ठीक तरह से जोतने-कोड़ने का प्रबन्ध और अच्छे बीज का प्रयोग होना आवश्यक है। इतना ही नहीं, उपजाये हुए अन्न को ठीक तरह से रखने की भी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि उसे कीड़े या चूहे नष्ट न कर सकें। हमें उतना ही खाना चाहिए, जिससे कि जीवन बना रहे। हमें भोजन को किसी तरह बरबाद नहीं करना चाहिए।

सिंचाई की उचित व्यवस्था का होना कृषि की उन्नति के लिए जरूरी है। सिंचाई कई तरीकों से होती है—जैसे कुओं तथा तालाबों द्वारा, नहरों तथा नदियों द्वारा आदि। हमारी राज्य-सरकार इस दिशा में प्रयत्न कर रही है। गांवों में कुआँ बनवाने के लिए सरकार सहायता देती है। नहरें बनायी जा रही हैं और बिजली के द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध भी शीघ्र ही लगभग सभी गांवों में हो जायगा। दामोदर घाटी-योजना के सफल होने से सिंचाई में सहूलियत हो गयी है। किन्तु अभी इससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका है। कोशी नदी को बांधने की एक योजना बनाई गई है और इसके लिए काम भी आरम्भ हो गया है। इस योजना के पूर्ण होने से हमें काफी विद्युत्-शक्ति मिलेगी, जिससे प्रकाश के अलावा सिंचाई का

काम भी लिया जायगा। साथ ही, उत्तर बिहार भयंकर बाढ़ों से बच जायगा। कोशी-योजना को काम में लाने के लिए राज्य-सरकार ने एक अलग विभाग ही खोल दिया है, जो एक प्रशासक के अधीन है।

सिंचाई के अलावा उचित खाद का प्रबन्ध भी होना चाहिए।

अज्ञानता के कारण हमारे ग्रामीण भाई गोबर जैसी उत्तम खाद को जलावन के रूप में व्यवहार में लाते हैं। गाँवों में गोबर, पत्तियाँ, कूड़े-करकट आदि से उत्तम कोटि की स्वाभाविक खाद तैयार की जा सकती है। इसके अतिरिक्त रासायनिक खादें हैं, जो मिलों में तैयार होती हैं। 'अल्मोनियम सल्फेट' जैसी उत्तम खाद के निर्माण के लिए धनबाद के निकट सिन्दरी में एक बहुत बड़ा कारखाना चालू हो गया है, जिसपर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण है। इस कारखाना द्वारा हमारे देश के लिए खाद की समस्या बहुत अंशों में सुलझ गयी है।

परन्तु, हमारी कृषि इतने से ही उन्नत नहीं हो सकती। हमारे किसान गरीब हैं। उनके पास पर्याप्त धन नहीं है कि वे इन सुविधाओं से फायदा उठा सकें। इस कठिनाई को हल करने के लिए गांवों में सहयोग-समितियाँ कायम हुई हैं और हो रही हैं। वे किसानों को ऋण तथा सहायता दे रही हैं, जिससे किसान अच्छे बीज खरीद सकें, ट्रैक्टरों द्वारा खेती की जुताई करा सकें, बिजली द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध करा सकें आदि।
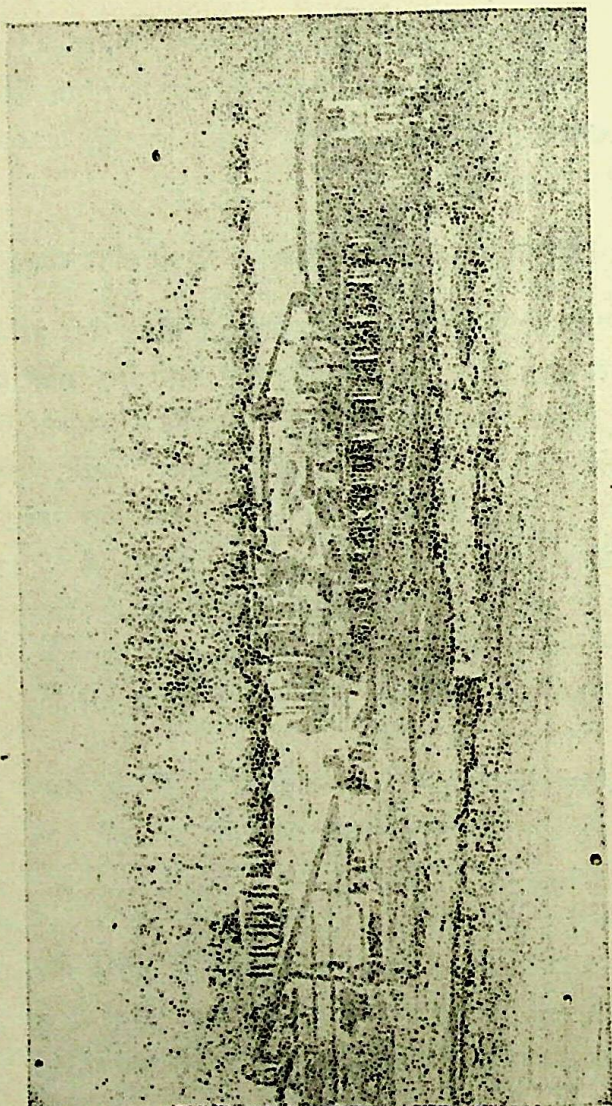
सिन्दरी का खाद-कारखाना

कृषि में उन्नति के लिए खेती के पुराने साधनों को छोड़कर नये प्रकार के लोहे के हल, ट्रैक्टरों आदि का प्रयोग करना होगा। परन्तु, हमारे खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हैं और इसलिए मशीनों द्वारा खेती भी सम्भव नहीं, जबतक कि खेतों का आकार बड़ा नहीं किया जाय और सहकारिता के सिद्धान्तों पर खेती न की जाय। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के अनुसार इन सभी दिशाओं में प्रगति की जा रही है।

हमारी राज्य-सरकार ने जमींदारी-प्रथा का अन्त कर दिया है। अब इस विषय पर विचार हो रहा है कि एक परिवार के अधीन अधिक-से-अधिक कितनी जमीन रहे। जमीन का उचित बँटवारा होना जरूरी है। सन्त विनोबा द्वारा भी इस दिशा में बहुत ही कोशिश की जा रही है। इन समस्याओं के सुलझाने के बाद ही कृषि-सुधार की नई योजना सफल हो सकेगी।

कृषि में उन्नति होने से हमारे भोजन का स्तर भी ऊँचा उठेगा। प्रत्येक मनुष्य के लिए यही काफी नहीं है कि वह कितना खाता है, बल्कि उससे अधिक यह जरूरी है कि वह कैसा भोजन करता है। दूध, दही, घी, मक्खन, फल, तरकारियाँ भात, दाल, रोटी आदि सभी चीजें हर आदमी को मिलनी चाहिए। संतुलित आहार वही कहा जायगा, जिसमें शरीर को स्वस्थ तथा पुष्ट रखने के सभी तत्त्व उचित अनुपात में मौजूद रहें। परन्तु, ऐसा भोजन अभी बहुत ही थोड़े लोगों को

मिलता है। लेकिन, इस बात की चेष्टा हो रही है कि प्रत्येक भारतीय उसे पा सके।

उद्योग-धन्धे

अँगरेजों के शासन के पूर्व हमारे देश के उद्योगों की अवस्था काफी अच्छी थी। यहाँ के लोग कृषि और तरह-तरह के कुटीर-उद्योगों में लगकर अपनी जीविका चलाते थे। अँगरेजी-शासन के अधीन विदेशों की मिल की बनी चीजें हमारे देश में ढेर-की-ढेर आने लगीं। देश में भी बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ खुलने लगीं और इसका फल यह हुआ कि हमारे कुटीर-उद्योग नष्ट होने लगे। अनेक लोग बेकार हो गये और वे खेती पर ही लद गये। जमीन पर बोझ बढ़ गया। जनसाधारण पर इन परिस्थितियों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, और इनके फलस्वरूप अमीर और अधिक धनी होते गये तथा गरीब और भी निर्धन।

अँगरेजों को हमारे कुटीर-उद्योग से कोई सहानुभूति नहीं थी। उन्हें तो अपने देश की बनी हुई चीजों को भारत में खपाना था। अतः, उन्होंने भी कुटीर-उद्योग को बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की।

परन्तु स्वतन्त्रता के बाद हमारी संघीय सरकार की दृष्टि इस दिशा में भी गयी है। हमारे संविधान में कुटीर-उद्योगों को, मिलों और फैक्टरियों के साथ ही विकसित करने का आदेश

है। हमारी सरकार कई नये-नये कारखाने खुलवा रही है, जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, परन्तु भारत-जैसे देश के
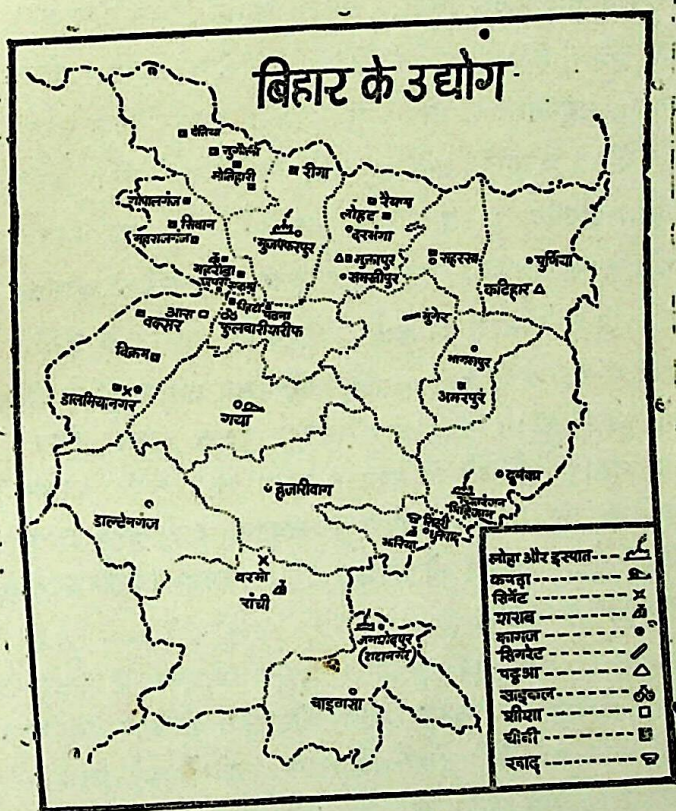
लिए जहाँ अधिकांश लोग गाँवों में रहते हैं, कुटीर-उद्योगों का विकास अधिक आवश्यक है। इससे गाँवों के लोग अपनी

आवश्यकता की चीजों को स्वयं बना लेंगे और इनसे कुछ आर्थिक फायदा भी उन्हें हो जायगा। कुटीर-उद्योगों में मुख्य हैं, कपड़ा बुनना, आटा पीसना, टोकरी बनाना, रस्सी बनाना, धान कूटना, तेल पेरना, चमड़े की चीजें तैयार करना, कागज बनाना, मधुमक्खी पालना, मुर्गी पालना, साबुन तैयार करना, स्लेट-पेंसिल बनाना, कम्बल, दरी, रेशमी कपड़े तैयार करना इत्यादि-इत्यादि। इन कुटीर-उद्योगों का पूरा विकास किया जा सकता है। इसके लिए पुराने औजारों को बदलकर नई तरह के औजारों को काम में लाने की शिक्षा देनी होगी। गावों में आने-जाने के लिए सड़कों को उत्तम बनाना होगा और बनी हुई चीजों की बिक्री का भी उचित प्रबन्ध करना होगा। समयानुसार ग्रामीणों को सरकार द्वारा ऋण तथा आर्थिक सहायता भी मिलनी चाहिए। जबतक राज्य-सरकार की ओर से कुटीर-उद्योगों को संरक्षण नहीं मिलेगा, तबतक इनका विकास सम्भव नहीं।

हमारी द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजना में मिल-उद्योगों के साथ-साथ कुटीर-उद्योगों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। दोनों प्रकार के उद्योगों का विकास जरूरी है। इसमें सन्देह नहीं कि कुटीर-उद्योगों को अधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए। भारत का भावी भाग्य बहुत कुछ इनके विकास पर ही निर्भर है।

अभ्यास

(१) खेत और उपज बढ़ाने के लिए किन-किन समस्याओं का हल करना होगा ?

(२) हमारे भोजन की समस्या कैसे हल होगी ?

(३) कुटीर-उद्योग का विकास क्यों और कैसे होना चाहिए ?

(४) हमारी सरकार कृषि और उद्योगों की उन्नति के लिए क्या-क्या कर रही है ?

अध्याय २४

मजदूर-संघ और उसका विकास

'संघ द्वारा ही शक्ति बढ़ती है', इसी सिद्धान्त के आधार पर मजदूर-संघों का संगठन आरम्भ हुआ। आधुनिक युग में सर्व-प्रथम इङ्गलैण्ड में ही सन् १८५० ई० के लगभग मजदूर-संघ या ट्रेड यूनियन की स्थापना हुई, जो प्रधानतः दरजियों और उनके साथ काम करनेवालों का ही संघ था। हमारे देश में मजदूरों का पहला संघ लगभग १८९० ई० में बम्बई में बना था, जिसका नाम था—बम्बई मिल हैण्ड्स-एसोसिएशन। परन्तु, यह संस्था थोड़े दिनों तक ही चल सकी। इनके बाद भी कई संघ बने। सन् १८९७ ई० के लगभग, रेलवे के कर्मचारियों ने अपना

एक संघ बनाया और सन् १९०७ ई० में डाक-विभाग के कर्मचारियों ने अपना एक संघ बनाया। सन् १९१८ ई० में मिलों में मिलों के कर्मचारियों ने अलग संघ बनाया और सन् १९२० ई० में महात्मा गांधी के प्रयत्नों के फलस्वरूप अहमदाबाद में कपड़े की मिलों के मजदूरों का एक आदर्श सं—बना। इसके बाद धीरे-धीरे प्रायः सभी व्यवसायों के मजदूरों ने अपना-अपना संघ बनाना आरम्भ किया। सन् १९२२ ई० में मजदूर-संघ-अधिनियम (ट्रेड-यूनियन-ऐक्ट) के पास हो जाने से मजदूर-संघों को भारत में भी कानूनी आधार मिल गया और वे उन्नति करने लगे। सन् १९२० ई० में अखिलभारतीय ट्रेड-यूनियन-कांगरेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ। इसके बाद शीघ्र ही कुछ मजदूर-नेताओं ने 'इण्डियन नेशनल ट्रेड-यूनियन-कांगरेस' नाम की एक दूसरी संस्था की स्थापना की। आज हमारे देश में तीन प्रमुख अखिलभारतीय मजदूर-संघ हैं, जिनकी शाखाएँ अलग-अलग भारत के प्रायः सभी औद्योगिक क्षेत्रों में हैं—इण्डियन नेशनल ट्रेड-यूनियन-कांगरेस, अखिलभारतीय ट्रेड-यूनियन-कांगरेस और सोशलिस्ट इण्डियन लेबर-कांगरेस।

आजकल तो प्रायः संसार के सभी सभ्य और औद्योगिक देशों में मजदूर संगठित हुए हैं और वहाँ की सरकारों द्वारा वे कानूनी ठहराये गये हैं। इतना ही नहीं, प्रायः सभी उन्नतिशील देशों में सरकार की ओर से मजदूरों की रक्षा के लिए अनेक कानून भी बन गये हैं, जिनका मानना मिल-मालिकों के लिए अनिवार्य है। हमारे देश में भी कई मजदूर-सम्बन्धी

कानून बने हुए हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य इनकी अवस्था को सुधारना ही है।

मजदूर-संघ कई उद्देश्यों से कायम किये जाते हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं:—मजदूरों की हालत अच्छी बनाना, अर्थात् अधिक पारिश्रमिक (वेतन) का प्रबन्ध करना, अच्छे घरों का प्रबन्ध, काम के घण्टों में कमी, छुट्टी की व्यवस्था, बीमारी में इलाज का प्रबन्ध, बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था आदि। इन सब मांगों को मिल-मालिकों के सामने रखने का काम तथा इन्हें पाने की पूरी कोशिश मजदूर-संघ ही करते हैं। यदि मिल-मालिक इन्हें मानने पर तैयार नहीं होते, तो संघ हड़ताल कराने की चेष्टा करता है। हड़ताल होने पर सभी मजदूर अपना काम निश्चित समय के लिए बन्द कर देते हैं और इसी बीच दोनों दलों द्वारा किसी समझौते पर पहुंचने की कोशिश की जाती है। मजदूर-संघ मजदूरों के संगठन को सुदृढ़ बनाये रखते हैं और वे इसकी भी चेष्टा करते हैं कि उनके सदस्य विधान-सभाओं के सदस्य चुने जायें, जिससे कि वे वहां मजदूरों के हित-सम्बन्धी कानून बनाने में सफल हो सकें।

प्रत्येक मजदूर-दल का एक नेता होता है, जो साधारणतः उस दल के बाहर का ही व्यक्ति होता है। यह प्रथा हमारे देश में अधिक प्रचलित है। यह उचित नहीं है, कारण कि किसी मजदूर-दल का नेता एक मजदूर को ही होना चाहिए।

आज तो हमारे देश में अनेक मजदूर-संघ कायम हो गये हैं। यहांतक की मिल-मालिकों और पूंजीपतियों की भी अपनी-

अपनी संस्थाएं बन गयी हैं। आज संसार में प्रायः सभी देशों के मजदूर और श्रमजीवी लगभग एक ही तरह की समस्याओं से घिरे हुए हैं, और इसलिए उनमें एकता की भावना बढ़ती जा रही है।

अभ्यास

(१) भारत में मजदूर-संघ का कैसे विकास हुआ ?

(२) मजदूर-संघों के उद्देश्य और कामों का विवरण दीजिए

अध्याय २५

सर्वोदय-समाज और भूदान-यज्ञ

सर्वोदय-समाज

आधुनिक भारत में सर्वोदय-समाज अथवा 'रामराज्य' के सिद्धान्तों को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ही प्रचलित किया। हमारे बापू एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे, जो सत्य और अहिंसा के आधार पर बना हो, जहां न वर्ग हो और न विभेद हो, और जहां सबका भला हो, सबकी उन्नति हो, सब आनन्दपूर्वक रहें। ऐसे समाज में न कोई राजा होगा और न कोई रंक; न कोई ऊँच होगा, न नीच। सभी खुशी से और गर्व से परिश्रम द्वारा, अपनी रोटी कमायेंगे। ऐसे समाज में नर-नारी की समानता होगी और नारीत्व का आदर होगा। सर्वोदय-समाज में श्रम का प्रतिष्ठान होगा और लोग प्रधानतः स्वावलम्बी बनने की कोशिश करेंगे। महात्माजी का कहना था

कि ऐसे समाज में सभी एक-दूसरे से प्रेम-सूत्रों द्वारा बँधे रहेंगे और आपसी द्वेष तथा वैर का अन्त हो जायगा। ऐसा समाज, जिसमें सब व्यक्तियों का विकास हो सके, जिसके सभी सदस्य सुखी और गुणवान् हों, जिसके सदस्यों में आपसी प्रेम और मित्रता हो, सर्वोदय-समाज कहलायगा। ऐसे सर्वोदय-समाज में न विरोध होगा, न द्रोह; न वैर होगा, न संघर्ष ही; न चोरी का डर रहेगा, न बेईमानी का और न कलह एवं द्वेष का। समाज के सभी सदस्यों के अधिकार और कर्त्तव्य बराबर ही रहेंगे।

इसी सर्वोदय-समाज की स्थापना हमारे बापू यहाँ करना चाहते थे। परन्तु, दुर्भाग्यवश स्वराज्य मिलने के छह महीने के भीतर ही महात्माजी की असामयिक मृत्यु हो गई। फिर भी, सौभाग्यवश आज सन्त विनोबा, श्रीजयप्रकाश नारायण तथा अन्य समाजसेवियों द्वारा बापू का यह आन्दोलन जीवित रखा गया है।

सन्त विनोबा और भूदान-यज्ञ

सन्त विनोबा का भूदान-यज्ञ बापू के सर्वोदय-आन्दोलन का एक विशिष्ट अंग है। देश की आर्थिक विषमता को दूर करने तथा अमीर-गरीब के भेद-भाव को मिटाने के लिए ही क्रान्तिकारी विनोबा, आज गांवों में पैदल घूम-घूमकर लोगों से जमीन मांगते फिरते हैं। यही नहीं, उन्होंने लोगों से सम्पत्ति-दान, श्रमदान और ज्ञानदान के लिए भी कहा है। विनोबाजी हृदय-परिवर्त्तन में विश्वास करते हैं, और लोगों से उनकी

जमीन या सम्पत्ति का केवल छठा भाग मांगते हैं। उनका कहना है कि अभी यदि शान्तिपूर्वक मांगने से लोग जमीन नहीं देंगे, तो एक ऐसा समय भी शीघ्र आयगा, जबकि दरिद्र, भूखी और असहाय जनता क्रान्ति करेगी और इनकी समूची जमीन और सम्पत्ति पर अधिकार जमा लेगी। इसीलिए सन्त विनोबा शांतिपूर्वक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति देश में लाना चाहते हैं। अबतक उन्हें लाखों बीघे जमीन मिल चुकी है।

परन्तु, विनोबाजी का अन्तिम लक्ष्य केवल जमीन इकट्ठा करना ही नहीं है, यह तो एक साधन-मात्र है। उनका लक्ष्य यह है कि जमीन और सम्पत्ति का, उचित और समान रूप से बंटवारा किया जाय, जिससे कि भूमिहीन लोगों को जमीन मिल सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोशिशें हो रही हैं। जो भूमि भूदान में प्राप्त हुई है, उसे भूमिहीन लोगों में बांटा जा रहा है।

भूदान-यज्ञ आधुनिक मानव-इतिहास में एक अनोखी क्रान्ति है, और आशा है, हमारे देश का इससे कल्याण हो सकेगा।

अभ्यास

(१) गांधीजी सर्वोदय-समाज के लिए क्या चाहते थे ?

(२) भूदान-यज्ञ से आप क्या समझते हैं ? इसका भविष्य कैसा है ?

(३) आप भूमि-समस्या के समाधान के लिए विनोबाजी द्वारा अपनाई गई नीति में विश्वास करते हैं या हिंसात्मक क्रान्ति में ?